चन्दामामा

जुलाई १९८२

जीवन और हनु की मानव जैसे प्राणियों से भेंट

हम सदा से ही डाल्फिनों को देखकर आकर्षित होते हैं। और ये डाल्फिनें— शरारतें करती हैं। हमसे दोस्ती करती हैं और अक्सर इन्सानों के साथ रहना पसन्द करती हैं। अनेक वैज्ञानिकों का विश्वास है कि डाल्फिन पृथ्वी के सबसे अधिक बुद्धिमान जीवों में से हो सकती हैं। मानव से अधिक नहीं तो कम से कम उतनी ही बुद्धिमान अवश्य हैं। प्राचीन यूनानियों का विश्वास था कि वे वास्तव में मानव ही थीं—जिन्होंने बाद में मछलियों का रूप धारण कर लिया और भूमि की अदला-बदली समुद्र के साथ कर ली।

डाल्फिन अपनी खोपड़ी में, जो रास्ता सा होता है, उसमें से हवा घुमाकर कई तरह की आवाज़ निकालती है। इसके माथे में चरबी का थैला इन आवाज़ों को फोकस करता है। 'ईको' सुनकर डाल्फिन तालाब में दूर पर गिराये गये छोटे से संगमरमर के टुकड़े को बता सकती है।

डाल्फिनों को सिखाया भी जा सकता है और सिखाने पर वे अजीबोगरीब करतब दिखाती हैं। सिखाने पर ये उछलने व कूदने, चक्कर खाने, गोता लगाने, छपछपाने के ऐसे करतब दिखाती हैं जो बहुत मुश्किल होते हैं—पर ऐसा लगता है जैसे सब संगीत की ताल पर हो रहा हो। सर्फबोर्ड पर कुत्ते को भी ये खींच सकती हैं। यही नहीं, बास्केट बाल भी खेलती हैं।

पानी से कूड़ा-करकट का हर टुकड़ा ढूँढने पर वह मछली इनाम में देता था। पर उसे शंका उस समय हुई जब एक 12-वर्षीय डा. स्पाक को बहुत ज्यादा इनाम मिलने लगे। अन्त में पता चला कि डा. स्पाक ने तालाब के एक किनारे पर रद्दी कागजों का बंडल छुपा रखा था और इनाम में मछली पाने के लिए थोड़ा थोड़ा करके उसमें से दे रही थी। डाल्फिन प्रशिक्षक को ही पढ़ा रही थी।

इसके पास में जब आदमी होते हैं, डाल्फिन अपनी नाक पानी से बाहर निकालती है और शोर मचाती है। ये सम्भवतः हम से बातचीत करना चाहती हैं। वैज्ञानिक इनकी भाषा का अध्ययन कर रहे हैं ताकि इनके इशारों का जवाब दिया जा सके।

एक डाल्फिन-प्रशिक्षक ने उनके तालाब को साफ सुथरा रखने के लिए कुछ को पालतू रखा हुआ था।

करोड़ों साल पहले, डाल्फिन पृथ्वी वासी थी। पर अब शरीर का पूरा ढांचा बदलकर, क्रमशः समुद्रवासी बन गयी है।

जीवन बीमा आपके भविष्य को सुरक्षित रखने का सबसे विश्वसनीय तरीका है। इसके बारे में और जानकार हो जाइये।

भारतीय जीवन बीमा निगम

चन्दामामा
संस्थापक : 'चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी
'स्वार्थ की सजा' नामक कहानी हमें यह शिक्षा देती है कि यदि मनुष्य अपनी भलाई के लिए दौड़-धूप करता है तो वह कोई दोष नहीं कहलाएगा, लेकिन उसके वास्ते हद से ज्यादा स्वार्थ की भावना से दूसरों की हानि कर बैठता है, तब वह अपराध कहलाता है। यही सत्य इस कहानी में प्रतिबिंबित है।
अमर वाणी
पुस्तकस्था तु या विद्या परहस्तगतं धनम्।
कार्यकाले समुत्पन्ने, न सा विद्या न तद्धनम्॥
[पुस्तकीय ज्ञान उस वक्त काम न देता जब कि निजी पांडित्य का प्रदर्शन करना पड़ता है, इसी तरह दूसरों को उधार दिया गया धन वक्त पर काम नहीं देता, इसलिए वे दोनों वृथा हैं।]
वर्ष : ३४ जुलाई १९८२ अंक : ११
एक प्रति : १-७५ : : वार्षिक चन्दा : २१-००
CHANDAMAMA PUBLICATION

जीत का राज

राजा चन्द्रसेन के दरबार में सर्वमित्र नामक एक बातूनी था। बातचीत में उसे जीतने वाला कोई न था। फ़ुरसत के समय राजा उसके मुंह से चमत्कार पूर्ण बातें सुनकर अपना मनोरंजन कर लेता था। एक बार राजा के मन में यह कौतुहल पैदा हुआ कि सर्वमित्र से भी ज्यादा चमत्कार पूर्ण बातें करने वाला कोई हो तो इसका पता लगा ले। इस वास्ते राजा ने सर्वमित्र की सलाह मांगी।

सर्वमित्र ने राजा से कहा–"महाराज, आप इस बात का ढिंढोरा पिटवा दीजिए कि जो मुझे बातचीत में हरा देगा, उसे सौ सोने की मुद्राएँ पुरस्कार में दी जाएँगी! मगर आप यह शर्त रखिये कि जो आदमी इस स्पर्धा में हार जाएगा, उसे एक हज़ार स्वर्ण मुद्राओं का जुर्माना चुकाना पड़ेगा। इससे क्या होगा, ऐरे-गैरे लोग स्पर्धा में भाग न लेंगे, मगर जो लोग जुर्माना चुका न पायेंगे, उन्हें दस कोड़े लगाये जायेंगे।"

राजा को यह सुझाव आच्छा लगा, उसने सारे देश में इस बात का ढिंढोरा पिटवाया। ढिंढोरा सुनकर बहुत से लोग राजधानी में आये, पहले दिन ही क़रीब सौ लोग स्पर्धा में भाग लेने आये।

सर्वमित्र ने सोचा कि स्पर्धा की शर्तें इतनी कठिन होने पर भी इतनी संख्या में लोग हिम्मत करके आये हैं, तो इसका मतलब है कि उन में कुछ लोग अक़्लमंद और बातूनी जरूर होंगे। बाक़ी लोग धन के लोभ में पड़कर दुस्साहस करके आये होंगे। यों विचार करके सर्वमित्र ने राजा से स्पर्धा के लिए दस दिन की मियाद मांगी। इस बीच छद्म वेष में जाकर वह सभी लोगों से मिला। सर्वमित्र के बड़प्पन का समाचार सुनाकर

उनको घबड़ा दिया, इस पर कई लोग डर कर वापस चले गये ।

स्पर्धा में भाग लेने आये हुए लोगों में गुणशील सब से ज्यादा अक़्लमंद मालूम हुआ । सर्वमित्र के मन में शंका पैदा हुई कि वह बातचीत में गुणशील को हरा नहीं सकेगा । यों सोचकर सर्वमित्र ने गुणशील को बताया कि अगर वह स्पर्धा में भाग न लेगा तो उसे दो सौ सिक्के दिये जायेंगे । गुणशील गरीब था, इस वज़ह से उसने सोचा कि स्पर्धा में भाग लिये बिना ही दो सौ सिक्के पाना कहीं अच्छा है, वह दो सौ सिक्के लेकर चला गया । बाकी लोगों को बड़ी आसानी से हराकर सर्वमित्र ने राजा से बहुत बड़ा पुरस्कार प्राप्त किया ।

थोड़े महीने बाद राजा ने फिर प्रतियोगिता की घोषणा की । इस बार भी गुणशील प्रतियोगिता में भाग लेने आया । सर्वमित्र ने इस बार भी गुणशील को दो सौ सिक्के देना चाहा, मगर गुणशील ने ज्यादा माँग की । आखिर वह पाँच सौ सिक्के लेकर वापस चला गया । सर्वमित्र ने बाक़ी लोगों को हराकर राजा से दूसरी बार पुरस्कार पा लिया ।

तीसरी बार प्रतियोगिता का इंतजाम हुआ । गुणशील उत्साह के साथ घर से चलने को हुआ, इस पर उसके बाप ने समझाया—"बेटा, तुम दो बार धन कमा ले आये हो । राजाओं के साथ के मामले खतरों से भरे होते हैं । खबरदार!"

"बाबूजी, मैंने आज तक स्पर्धा में भाग नहीं लिया ।" इन शब्दों के साथ गुणशील ने अपने पिता को सारा समाचार सुनाया ।

पिता अचरज में आकर बोला—"बेटा, बातचीत में तुम्हारी जो अक़्लमंदी है, वह दुनियादारी बातों में नहीं है । सर्वमित्र तुम्हारी वाक्‌चातुरी पर डरकर ही तुम्हें धन देता है । इस बार तुम सर्वमित्र से धन मत लो । स्पर्धा में जीत कर राजा का आश्रय प्राप्त करो ।"

इस बार सर्वमित्र ने गुणशील को एक हज़ार सिक्के देने का लोभ दिखाया, पर गुणशील ने लेने से इनकार किया। इस पर सर्वमित्र यह सोचकर डर गया कि गुणशील उसे जरूर स्पर्धा में हरा सकता है। उसने रातों रात अपने अनुचरों के द्वारा उसे पकड़वा ले जाकर जंगल में छोड़ दिया। गुणशील जब जंगल से लौटा तो देखता क्या है, स्पर्धा समाप्त हो गई है।

इसके बाद गुणशील ने कई बार स्पर्धा में भाग लेने की कोशिश की, मगर सर्वमित्र ने उसे एक बार भी स्पर्धा में भाग लेने नहीं दिया। इस वजह से गुणशील के भीतर स्पर्धा में भाग लेने की जिद बढ़ती गयी। वह वेष बदल कर जाता या मूर्खता पूर्वक बातचीत करता तब भी सर्वमित्र उसे पहचान लेता था।

इस प्रकार दस प्रतियोगिताएँ चलीं। ग्यारहवीं बार सर्वमित्र गुणशील का पता लगा न पाया। आखिर प्रतियोगिता के समय उसे प्रतिभागियों के बीच देख सर्वमित्र घबरा गया। सबसे पहले राजा ने प्रतिभागियों के बीच स्पर्धा का इंतजाम किया। गुणशील ने उन सबको परख कर देखा और कहा—"एक बार मैं घने जंगल से होकर जा रहा था, तब मेरे सामने अचानक छे फुट लंबा एक बाघ दिखाई दिया।"

"सचमुच तुम्हें बाघ दिखाई दिया?"

"तुम लोगों को मुझ से यह सवाल करना नहीं था, बल्कि यह पूछना था कि

तुम जिंदा कैसे बच निकले! है न?" गुणशील ने पूछा।

राजा ने तालियाँ बजाकर कहा–"वाह, वाह!" इसके बाद गुणशील और सर्वमित्र के बीच प्रतियोगिता शुरू हुई।

"तुमने यह खूब बताया कि सामने वालों को तुमसे कैसे सवाल पूछना है? पर तुम यह जानते हो कि तुमसे कैसे सवाल पूछना है?" सर्वमित्र ने कहा।

"मैं अपने सवाल की बात बाद को बता दूँगा। अभी मैंने एक ख़बर सुनाकर उसके बारे में कैसे सवाल पूछना है, बता दिया है। यही खबर अगर मैं एक बार तुमको सुना दूँ, तो उसके बारे में एक मजेदार सवाल पूछने में क्या तुम अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दे सकते हो?" गुणशील ने पूछा।

"सवाल करके तो देखो तो, तुम्हें खुद इसका पता चल जाएगा!" सर्वमित्र ने परिहास किया।

"एक बार मैं घने जंगल से होकर गुजर रहा था, तब मेरे सामने से अचानक छे फुट लंबा एक बाघ आ निकला!" गुणशील ने कहा।

"तब तुम कैसे बचे?" सर्वमित्र ने पूछा।

"यह सवाल तो एक साधारण बुद्धि वालों के द्वारा पूछने का है! तुम जैसे व्यक्ति को तो यह सवाल करना था कि दर असल तुम घने जंगल में क्यों गये?" गुणशील ने उलटा सवाल किया।
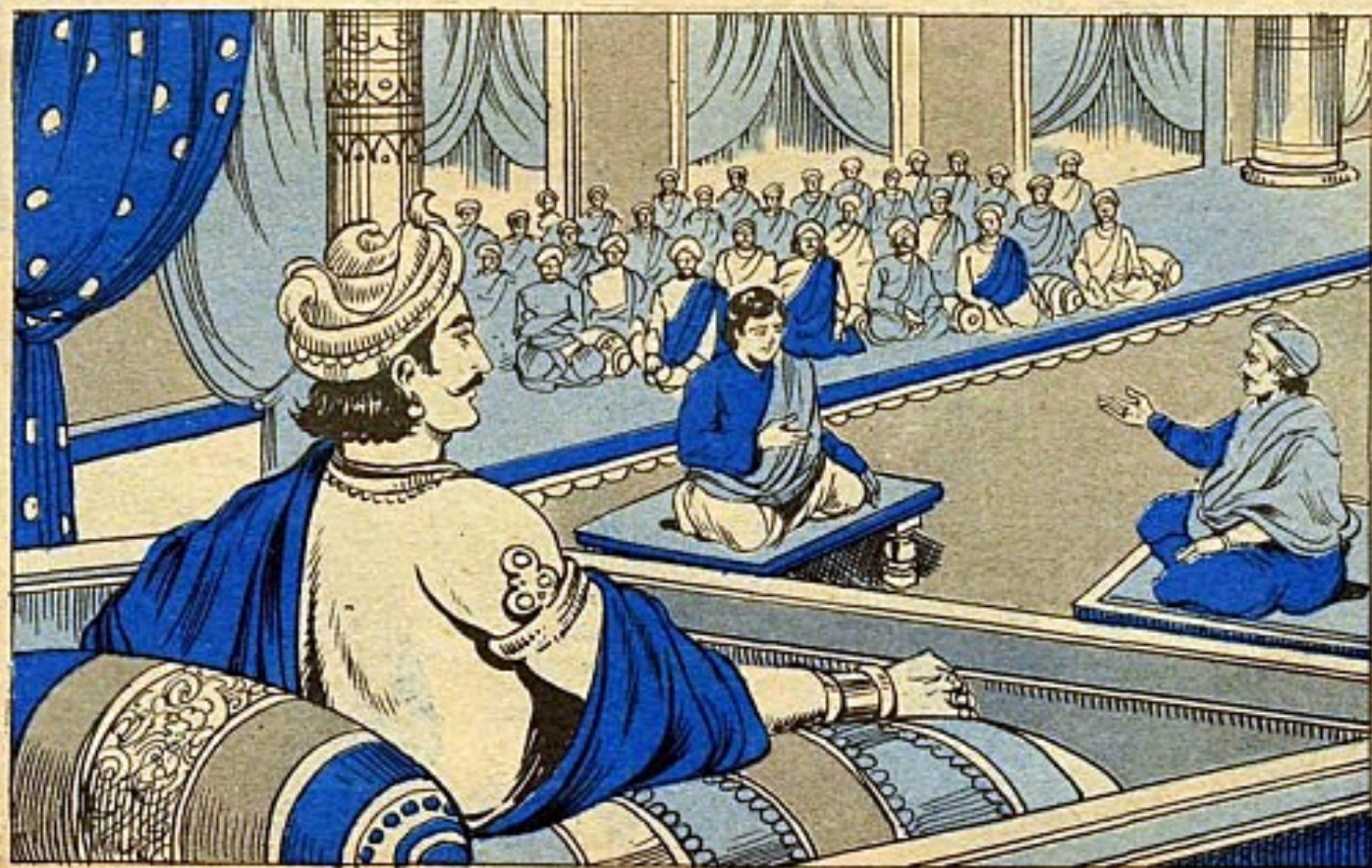
राजा बड़े ही कौतूहल के साथ उनका वार्तालाप सुन रहा था। गुणशील के कहे मुताबिक़ सर्वमित्र ने पूछा।

"क्या बता दूं? इन प्रतियोगिताओं में भाग लेने से एक व्यक्ति मुझे रोक रहा है! इसलिए सबकी आँख बचाने के लिए मैंने यह नया मार्ग चुन लिया है!" गुणशील ने जवाब दिया। यह जवाब सुनने पर सर्वमित्र का बदन पसीना-पसीना हो गया। क्योंकि गुणशील बड़ी होशियारी के साथ उसके अपराध को प्रकट करने का प्रयत्न कर रहा था। इसलिए उसे उल्टी चाल चलनी है!

"मैं जानता था कि तुम यही जवाब दोगे! तुम यह भी कह सकते हो कि तुमको रोकनेवाला व्यक्ति सर्वमित्र है! पर तुम्हारी इस वाचालता पर कोई विश्वास न करेगा! अच्छी बात है! यह बताओ, तुमने उस बाघ के मुँह में जाने से अपने को कैसे बचा लिया?" सर्वमित्र ने पूछा।

"बाघ का सामना करके अपनी जान बचाने के लिए मैं कोई बहुत बड़ा पराक्रमी योद्धा नहीं हूँ। अचानक झाड़ियों के पीछे से तुम्हारा बेटा और दो नौकर मुझे यहाँ पर आने से रोकने के ख़्याल से बन्दी बनाने बाहर आये! उस वक़्त बाघ ने मुझे छोड़कर उन लोगों पर हमला किया। तब मौक़ा पाकर मैं भाग खड़ा हुआ और यहाँ पर आ पहुँचा।" गुणशील ने अपनी कहानी समाप्त की।

अपने पुत्र के बाघ के मुँह में जाने की ख़बर सुनते ही सर्वमित्र चीख़कर वहीं पर लुढ़क पड़ा। इसके बाद राजा के पूछने पर गुणशील ने सर्वमित्र के षड़यंत्रों का पूरा परिचय दिया। राजा ने सभा स्थगित की, इसके पूर्व प्रतियोगिताओं में भाग लेने आये हुए लोगों से दरियाफ़्त किया तो यह सत्य साबित हुआ कि गुणशील का कहना सच है!

इसके बाद राजा ने सर्वमित्र को कारागार की सजा दी और गुणशील को अपने दरबार में न केवल नौकरी दी, बल्कि उस दिन से वाक्चातुरी की प्रतियोगिताएँ चलाना भी बंद किया।
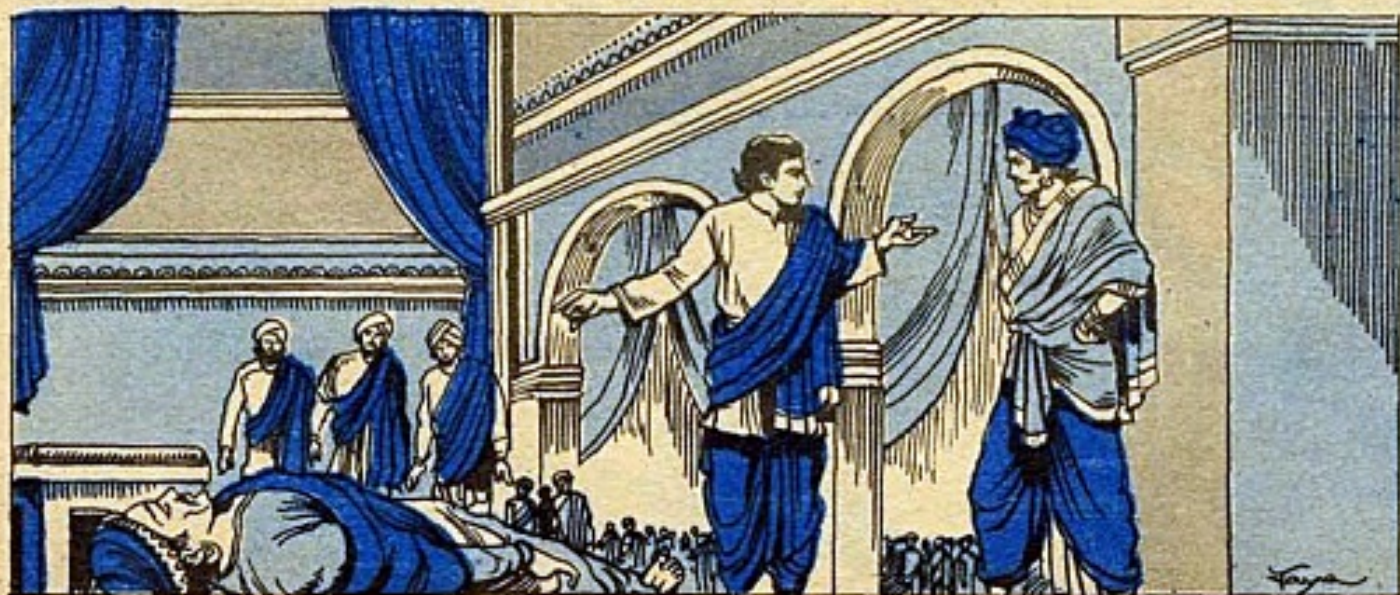
[८]

[दुश्मन पर हमला करने नरवाहन और समरसेन चल पड़े। नगर के बाहर के मैदान में भयंकर लड़ाई हुई। वैसे समरसेन की जीत हुई, लेकिन वह बुरी तरह से घायल हो गया। नरवाहन मिश्र ने अपने को राजा घोषित किया। शिवदत्त ने अपने अनुचरों के साथ गुप्त द्वार से भागने का निश्चय किया। बाद...]

शिवदत्त ने निराशा के साथ सर हिलाकर कहा—"इसके पहले मुझे ऐसी कोई ज़रूरत न पड़ी। लेकिन गुप्त द्वार के खोलने के बाद मुझे महसूस हुआ कि उस अंधेरे में मशालों की मदद के बिना चलना नामुमकिन है। उस जल्दबाजी में मैं मशालों की बात भूल चुका था, लेकिन मेरे अनुचर सतर्क थे। वे लोग मशाल जलाकर सुरंग में उतर पड़े। मैं भी उनके साथ उतर पड़ा। मेरे पीछे चलनेवाले अनुचर ने मुझे सावधान करते हुए कहा—"महासेनापतिजी, दुश्मन ने क़िले का दर्वाजा तोड़कर अंदर प्रवेश किया है। उस कोलाहल को सुनिये!"

"तुम इसी वक़्त सुरंग का दर्वाजा बंद करो; नरवाहन के पहुँचने तक उन्हें इस गुप्त द्वार का पता न चलेगा। इस बीच हम हिफ़ाजत के साथ बाहर निकल

सकते हैं। डरने की कोई बात नहीं है।" मैंने समझाया।

अंधेरे से भरे उस सुरंग में थोड़ी दूर तक आगे चलने पर हमारे रास्ते के आड़े लटकनेवाली एक लोहे की जंजीर दिखाई दी। मैंने अपना सर उठाकर ऊपर देखा। वहाँ पर सुरंग के ऊपरी हिस्से में एक बहुत बड़ा किवाड़ बिठाया गया है। मैंने बड़ी सतर्कता के साथ जंजीर को थोड़ा-सा खींचा; 'बुस' आवाज करते पानी सुरंग के अंदर आ गया। तब जाकर मैं समझ पाया कि जंजीर से बंधा हुआ वह क़िवाड़ वहाँ पर क्यों बिठाया गया है। अगर दुश्मन गुप्त द्वार का पता लगाकर हमारा पीछा करे तो उस किवाड़ को जंजीर की मदद से नीचे उतारकर सारे पीछेवाले सुरंग को जलमय बनाया जा सकता है। मुझे लगा कि यह एक अच्छा उपाय है। इस ख्याल से मैंने गुप्त द्वार की ओर देखा कि इस समय कहीं इसका उपयोग करने की ज़रूरत है या नहीं? मेरी शंका की पुष्टि हो गई। उधर अंधेरे में कुछ मशाल हिलते दिखाई दिये। इसका मतलब था कि दुश्मन को मेरा पता चल गया है। मुझे ज़्यादा देर तक सोचने का मौक़ा न था। मैंने अपनी सारी ताक़त लगाकर क़िवाड़ से बंधी जंजीर खींच दी। धम्म से किवाड़ सुरंग के आड़े गिर पड़ा, इसके साथ पानी गरजते नीचे की ओर बह पड़ा।

अब मेरा कर्तव्य जहाँ तक हो सके, जल्दी सुरंग से बाहर पहुँचने का था। विलंब होने पर जंगल में खुलनेवाले सुरंग के दूसरे छोर को नरवाहन अपने सैनिकों के साथ घेर सकता है। ऐसा हुआ तो मेरे और मेरे अनुचरों की हालत ऐसी हो जाएगी जैसी पिंजड़े में फंसे चूहों की हो जाती है।

थोड़ी ही देर में हम लोग सुरंग के दूसरे छोर पर पहुँचे। वहाँ पर सुरंग के नीचे के हिस्से से ऊपर पहुँचने के लिए

सीढ़ियाँ बनाई गई हैं। बिना आहट किये मैं उन सीढ़ियों पर चढ़ गया। वहाँ के दर्वाजे पर कान लगाकर दर्वाजे के उस पार की आहट की टोह लेने लगा।

थोड़ी देर तक चारों ओर नीरवता छा गई थी, इसलिए मैंने सोचा कि पेड़ के तने में बिठाये गये गुप्त द्वार को खोलकर जहाँ तक हो सके, जल्दी बाहर पहुँच जाना हितकर है। मैंने दर्वाजे पर हाथ रखा, जंग लगी अर्गलाओं को हिलाने की कोशिश की, तभी उस पार से घोड़ों के हिनहिनाने की आवाज़ और मनुष्यों की बातचीत सुनाई दी।

एक आदमी अपने साथी से कह रहा था–"यहाँ का प्रदेश बिलकुल सुरक्षित है। पेड़ के तने में स्थित गुप्त द्वार एकदम बंद पड़ा है।"

"ओह, ऐसी बात है! तब तो वे सारे द्रोही सुरंग के पानी में फंसकर चूहों की तरह मर गये होंगे।" दूसरे ने अपनी खुशी ज़ाहिर करते हुए कहा।

इसके बाद थोड़ी देर तक कोई बातचीत सुनाई न दी। मैं अपने आगे के कर्तव्य के बारे में सोच ही रहा था, तभी अधिकार पूर्ण स्वर में एक कंठ ध्वनि मुझे सुनाई दी–"इतनी दूर पर खड़े होकर बातचीत करते रहने पर कोई फ़ायदा नहीं है। हम नहीं जानते कि वे दुष्ट लोग मर गये हैं या हम लोगों के यहाँ आने के पहले ही इस द्वार से निकल कर कहीं जंगल में भाग गये हैं। तिसपर राजा नरवाहन मिश्र ने मुझे कठोर शब्दों में आदेश दिया है और साथ ही मुझे प्रलोभन भी दिया है कि चाहे मृत हालत में या जिंदा ही सही शिवदत्त का सर ले जाऊँ तो वे मुझे एक सामंत राज्य सौंप देंगे। ऐसा मौक़ा फिर मुझे कब मिल सकता है। तुम्हीं लोग बताओ।"

"तब तो यह बड़ी खुशी की बात है, आप हमें तुरंत आदेश दीजिए, हमें इस वक़्त क्या करना होगा?" एक साथ डरते हुए दो आदमियों ने पूछा।

"तुम लोग अभी पेड़ के तने के पास सुरंगवाला गुप्त द्वार खोल कर देख लो! यदि उसके पीछे वाला सुरंग जल से भर गया हो तो इस वक़्त हमें उसकी लाश भी मिल नहीं सकती। वरना हमें अपने आगे के कार्यक्रम के बारे में गंभीरता पूर्वक फिर से विचार करना पड़ेगा..."

उसकी बात अभी पूरी न हो पाई थी कि द्वार की बगल में से सिंह का भयंकर गर्जन सुनाई दिया। इसके साथ और जानवारों के गर्जन भी एक साथ सुनाई दिये। नरवाहन मिश्र के सैनिकों के वापस लौटने की सूचना के रूप में घोड़ों की हिनहिनाहटें और सैनिकों की चेतावनियाँ भी सुनाई दे रही थीं।

"उस वृक्ष के तने के पास शायद सिंह आदि खूँख्वार जानवर हैं। हमें खतरा पैदा हो सकता है, तुम लोग पीछे हट जाओ।" यों एक आदमी चिल्ला उठा। इसके कुछ क्षण बाद उनके नेता का स्वर सुनाई दिया–"सिंह ही नहीं, हाथी, भालू भी क्यों न हों, हमारा काम पूरा किये बिना तुम लोग पीछे लौट नहीं सकते। जो लोग पीछे हटेंगें ऐसे कायरों को मैं अपनी तलवार की बलि चढ़ाऊँगा।"

इसके बाद सिंहों के द्वारा उन सैनिकों पर हमला करने की ध्वनि, भयंकर गर्जन, घोड़ों की भगदड़, सौनिकों की चिल्लाहटें एक साथ सुनाई दीं। मुझे लगा कि मुझे अगर अपने अनुचरों के साथ सुरंग से

सुरक्षित बाहर निकलना हो, तो इससे अच्छा मौक़ा हाथ न लगेगा।

मैं मन ही मन विचारने लगा कि नरबाहन के सैनिक सारे सिंहों का वध करने के बाद मुझे तथा मेरे अनुचरों का अंत करने के लिए सुरंग द्वार के पास जरूर लौटकर आयेंगे।

मैंने अपने अनुचरों को उस समय की हालत सुनाकर समझाया कि उस खतरे से बचकर अगर थोड़े लोगों को भी बचकर भागना है, तो उस हालत में हमें क्या क्या करना है! मेरे सुझावों को बड़ी सहानुभुति के साथ सबने मान लिया कि नरवाहन के सैनिकों द्वारा सिंहों से लड़ते वक़्त उन्हें भी उन सैनिकों का सामना करने या जंगल के रास्ते भाग जाने का अच्छा मौक़ा है।

उस स्थिति में एक नेता के रूप में मेरी जिम्मेदारी मेरे अन्दर खलबली मचाने लगी। इस वक़्त में अपने अनुचरों को जो सुझाव और आदेश दूंगा उसी पर हम सब लोगों का भविष्य निर्भर था। क्यों कि उन्हीं के आधार पर थोड़े क्षणों में मेरे साथ, मेरे अनुचरों की मौत हो सकती है या सुरक्षित प्रदेश में भाग जाने का हमें मौक़ा हाथ लग सकता है।

ये सारी बातें सोचकर मैंने थोड़ा भी विलंब किये बिना तत्काल गुप्त द्वार खोल दिया। जंग लगे वे दर्वाजे किर्र-किर्र आवाज़ करते जल्द ही खुल गये। मैंने
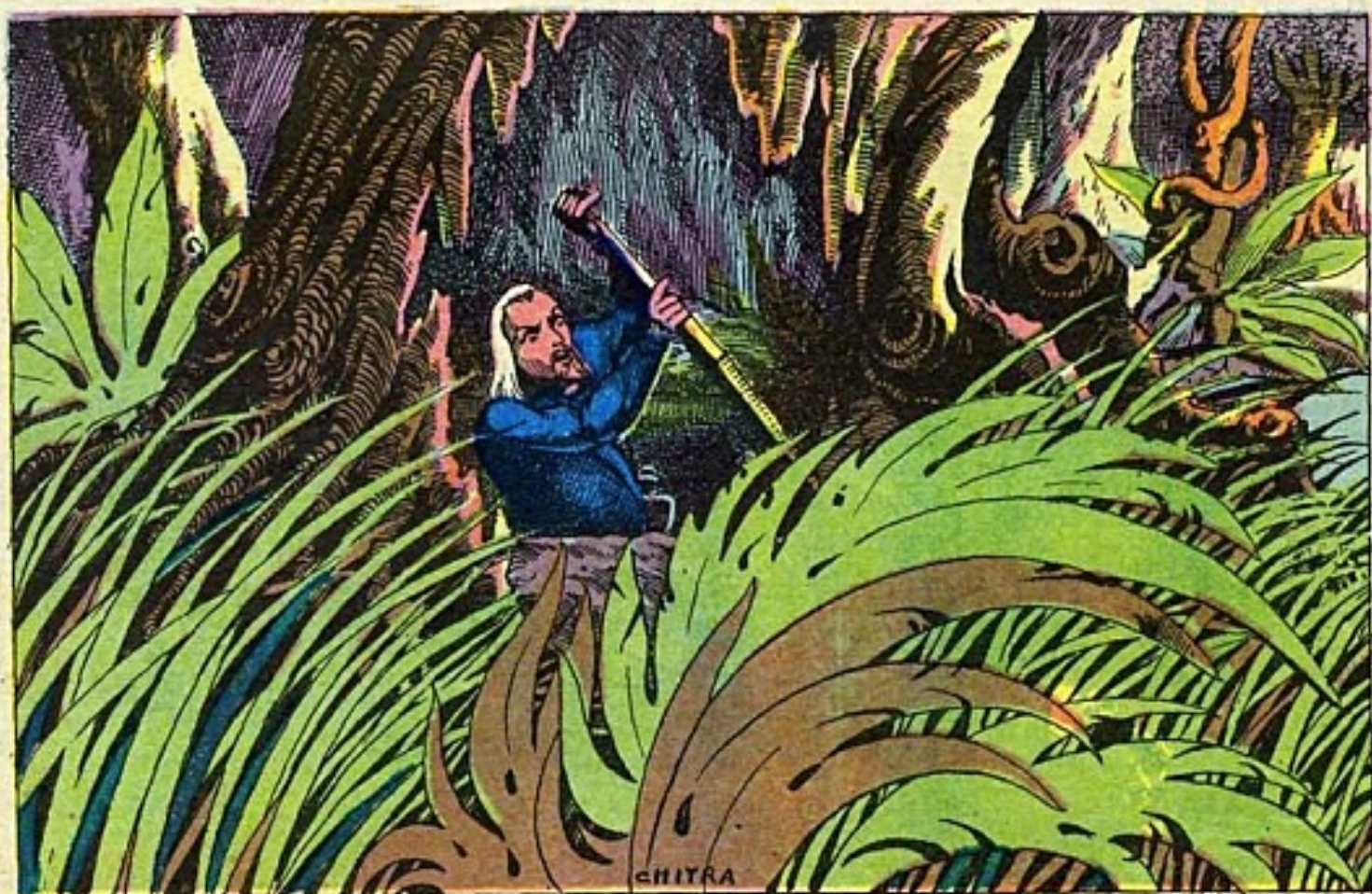
बाहर झांककर देखा, मुझे वहाँ की घटना भीभत्स मालूम हुई।

छोटे-बड़े पाँच-छे सिंह एक साथ घोड़ों पर सवार सैनिकों पर आक्रमण कर रहे थे। सैनिक कुल मिलाकर लगभग बीस तक थे। वे लोग पेड़ों के बीच फंसकर भयंकर गर्जन के साथ हमला करने वाले सिंहों के पंजों की मार से बचने के लिए अपने भालों का प्रयोग करते थे।

थोड़ी दूर पर घोड़े पर सवार उन सैनिकों का सरदार अपने हाथ की तलवार को हवा में घुमाते हुए चिल्ला–चिल्ला कर आदेश दे रहा था–"तुम लोग डरो मत, सिंहों को मार डालो! पीछे मत हटो।" पर वह खुद सिंहों के साथ लड़ने की कोशिश नहीं कर रहा था, उल्टे खतरे की हालत में भाग जाने के लिए अपने घोड़े को पीछे की ओर ले जा रहा था।

मुझे तथा मेरे सैनिकों को भी सुरंग द्वार से बाहर निकलते नरवाहन के सैनिक या उनके नेता ने भांप नहीं लिया था; उनकी दृष्टि अपने प्राणों को बचाने पर केंद्रित थी। मैं अपने अनुचरों के साथ झाड़ियों के पीछे छिपते एक-एक क़दम आगे बढ़ाते थोड़ी देर में नरवाहन के पीछे पहुँचा। एक तो एक तरफ़ से सिंह उन्हें मारने पर तुले थे, दूसरी ओर से अचानक हमला करके मैंने उनका संहार करना चाहा।

मेरे विचारों से मेरे अनुचर भी सहमत हो गये। मगर एक-दो अनुचर यह सोचकर डर गये कि नरवाहन के सैनिकों पर हमला करने वाले सिंह मौक़ा पाकर उन पर भी आक्रमण कर सकते हैं। मैंने उन्हें समझाया कि जब हम लोग मौत के साथ गले लगने को तैयार हो गये हैं, ऐसी हालत में चाहे दुश्मन के हाथ हमारी मौत हो या सिंहों के द्वारा, इस में कोई बहुत बड़ा फ़र्क़ नहीं पड़ता।

झाड़ियों के पीछे ताक लगाये बैठा मैं एक साथ चिल्ला उठा–"समरसेन की

जय!" तब पीछे से नरवाहन के सैनिकों पर धावा बोल दिया। भयंकर नारे लगाते मेरे अनुचर उग्र नर सिंहों की भांति उन पर टूट पड़े।

मेरे प्रथम वार से ही नरवाहन के सैनिकों के नेता का सर कटकर नारियल जैसे हवा में उड़कर दूर झाड़ियों में जा गिरा। इस पर मेरे अनुचर जो भी दुश्मन सामने आया, उसका सर गाजर-मूली की तरह काटने लगे। उस लड़ाई के बीच किसी ने भी सिंहों की फ़िक्र तक नहीं की। तिस पर इसके पहले ही नरवाहन के भालों की मार से दो-तीन सिंह चोट खाकर जमीन पर लोट रहे थे; बाक़ी सब हमारे भयंकर गर्जन सुनकर डरकर भागने लगे।

चार-पाँच मिनटों के अन्दर नरवाहन के सैनिकों में से ज्यादातर लोग हमारी तलवारों के शिकार हो गये। उनके द्वारा यह समझने के पहले ही कि अचानक उन पर हमला करने वाले कौन हैं, इस बीच हमने कई लोगों का अंत किया। मगर बाक़ी दस-बारह लोग संभल गये। उनमें से एक सैनिक चिल्ला उठा—"शिवदत्त द्रोही है। इसी वक़्त उसे मार डालो। उसका सर ले जाने पर एक सामंत राज्य हमें मिल जाएगा।" इन शब्दों के साथ वह हम पर हमला कर बैठा।

उस सैनिक ने जो साहस प्रदर्शित किया और अपने अनुचरों में जो हिम्मत पैदा की, उसके फलस्वरूप वे सब एक साथ मेरे अनुचरों पर टूट पड़े। मेरे कुछ सैनिक यह सोचकर निश्चित से हो गये थे कि हमारी जीत हो गई है, उनमें से कुछ लोग अचानक मारे गये। मैंने दुश्मन के एक प्रधान सैनिक के घोड़े पर तलवार भोंक दी। चोट खाकर घोड़ा अपनी पिछली टांगों पर खड़ा हो गया, जिससे उस पर सवार सैनिक नीचे गिर पड़ा, घोड़ा हिनहिनाते उस सैनिक पर लुढ़क पड़ा। (और है।)
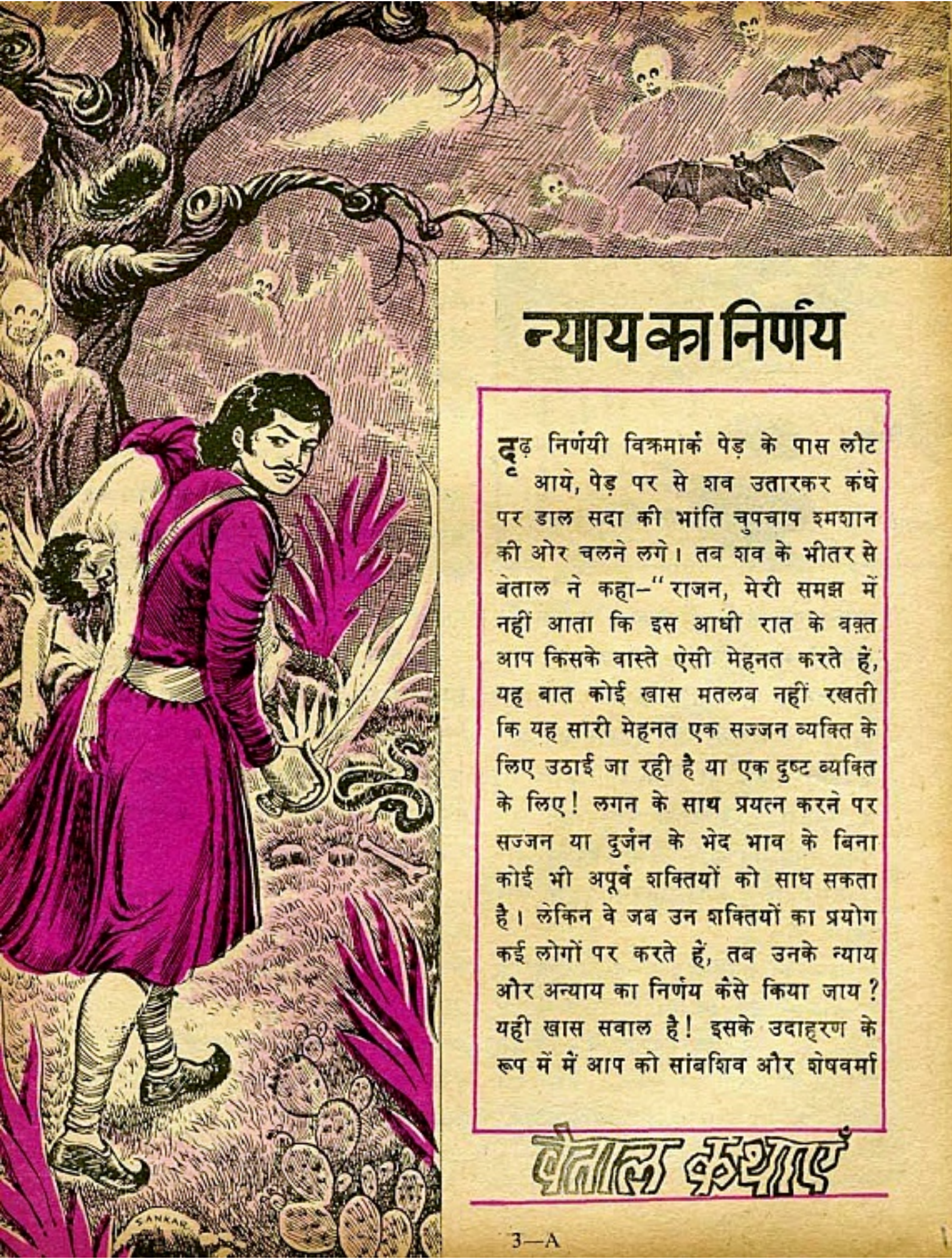
न्याय का निर्णय

दृढ़ निर्णयी विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आये, पेड़ पर से शव उतारकर कंधे पर डाल सदा की भांति चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगे। तब शव के भीतर से बेताल ने कहा–"राजन, मेरी समझ में नहीं आता कि इस आधी रात के वक़्त आप किसके वास्ते ऐसी मेहनत करते हैं, यह बात कोई खास मतलब नहीं रखती कि यह सारी मेहनत एक सज्जन व्यक्ति के लिए उठाई जा रही है या एक दुष्ट व्यक्ति के लिए! लगन के साथ प्रयत्न करने पर सज्जन या दुर्जन के भेद भाव के बिना कोई भी अपूर्व शक्तियों को साध सकता है। लेकिन वे जब उन शक्तियों का प्रयोग कई लोगों पर करते हैं, तब उनके न्याय और अन्याय का निर्णय कैसे किया जाय? यही खास सवाल है! इसके उदाहरण के रूप में मैं आप को सांबशिव और शेषवर्मा

बेताल कथाएं

नामक दो मित्रों की कहानी सुनाता हूँ। श्रम को भुलाने के लिए सुनिये।"

बेताल यों सुनाने लगा: विजयपुर नामक एक छोटे से गाँव में सांबशिव और शेषवर्मा नामक दो मित्र रहा करते थे। वे मजदूरी करके अपने पेट पालते थे। उनमें सांबशिव शांत स्वभाव का था और अक़्लमंद भी। मगर शेषवर्मा उद्दण्ड और स्वार्थी था।

एक दिन शेषवर्मा अपने दोस्त सांबशिव से बोला–"इस ज़िंदगी से मैं ऊब गया हूँ। इस तरह गाँव में मजदूरी करते हम तरक़्क़ी कभी नहीं कर सकते। चलो, हम दोनों एक बार देशाटन करके लौट आयेंगे। कहीं न कहीं हमें अपनी गरीबी दूर करने लायक़ धन कमाने का रास्ता निकल आएगा।"

सांबशिव को अपने दोस्त की सलाह अच्छी न लगी, वह बोला–"लोभ सब तरह से अनर्थकारी होता है! कहीं भी जाये, हमें तो मजदूरी करके ही अपने पेट भरने होंगे। ऐसी हालत में हम क्यों अपने गाँव को छोड़कर चले जायें?"

मगर शेषवर्मा को सांबशिव का यह सुझाव पसंद न आया। दूसरे ही दिन वह अपने गाँव को छोड़ चल पड़ा। थोड़े दिन बाद एक जंगल के रास्ते चलते वक़्त उसने एक जगह एक मुनि को तपस्या करते देखा।

शेषवर्मा ने सुन रखा था कि तपस्वी लोग वरदान देते हैं। इसलिए वह मुनि के पास पहुँचा, साष्टांग दण्डवत करके उनको अपनी गरीबी की हालत बताई, तब उनसे प्रार्थना की कि उसे एक बहुत बड़ा धनवान बनने का उपाय बता दें।

शेषवर्मा की बातें सुनकर मुनि मुस्कुरा कर बोले–"बेटा, बिना मेहनत के कोई भी चीज़ प्राप्त नहीं होती। तुम लगन के साथ तक़लीफ़ों को सहन कर सकोगे तो मैं तुम्हें एक मंत्र सिखाऊँगा; उस मंत्र का जाप करते तुम कुछ दिन तपस्या कर सकोगे तो तुम्हें लक्ष्मी की कृपा प्राप्त होगी!"

शेषवर्मा ने मुनि की बात मान ली। मुनि ने उसे एक मंत्र का उपदेश दिया।

जंगल के बीच एक बहुत बड़ा पहाड़ था। शेषवर्मा ने वहाँ पर जाकर अपनी तपस्या शुरू की। उस पहाड़ पर कई सालों से शृंगी नामक एक भयानक भूत निवास करता था। वह इसके पहले विन्ध्याचल में रहा करता था। वहाँ पर एक मुनि ने जाकर घोर तपस्या शुरू की; उस मुनि की तपस्या से शृंगी डर गया और पहाड़ पर आ गया था।

शेषवर्मा ने जब उस पहाड़ पर तपस्या शुरू की, तब शृंगी घबरा गया। उसने किसी उपाय से शेषवर्मा को उस पहाड़ पर से भगाना चाहा। इस ख्याल से उस भूत ने शेषवर्मा के निकट जाकर पूछा—"तुम इस छोटी-सी उम्र में तपस्या करते हो, आखिर इसकी वजह क्या है?"

शेषवर्मा ने बताया कि वह लक्ष्मी को प्रसन्न करके धन कमाना चाहता है।

भूत धीरे से चुटकी बजाकर बोला—"तुम इस छोटी-सी बात को लेकर तपस्या करते हो? तुम्हें मैं कई अद्भुत शक्तियाँ दे देता हूँ। उनका प्रयोग करके तुम मन चाहा धन कमा सकते हो। मगर इसके बाद तुम फिर कभी इस पहाड़ पर पहुँचने की कोशिश न करो।"

शेषवर्मा ने भूत की शर्त मान ली। भूत ने उसे क्षुद्र मंत्रों के द्वारा कई अद्भुत शक्तियाँ दे दीं।

स्वार्थ की सजा

माणिकपुर नामक राज्य में मंथर नामक एक दलपति था। वह पहरेदारों के विभाग का अधिकारी था। उसके मातहत कुछ पहरेदार और जासूस काम करते थे। राज्य के अन्दर चोरी-डकैती, विद्रोह और पड़ोसी देशों से हमला होने से रोकने की कोशिश करना उसकी जिम्मेदारी थी।

मंथर बड़ा स्वार्थी था। वह अपने अधीन रहने वालों के प्रति बड़ा ही कठोर व्यवहार करता था। वे लोग अगर अपने कर्तव्य के पालन में कोई सफलता प्राप्त करे तो उसे अपनी सफलता बताकर राजा की प्रशंसा और पुरस्कार पाता था। मगर उसकी असावधानी और असमर्थता के कारण कोई हानि हो जाय तो उसे अपने अधीन काम करने वाले कर्मचारियों के सर पर डालकर राजा से शिकायत किया करता था।

एक बार नगर के पूर्वी द्वार पर पहरा देने वाले पहरेदार ने दुश्मन के भेदिये को पकड़ लिया और दलपति मंथर के हाथ उसे सौंप दिया।

मंथर ने पहरेदार की बड़ी तारीफ़ की। इसके बाद उसने राजा के पास जाकर कहा–"महाराज, रात को पूर्वी द्वार पर मैंने छद्म वेष में हमारे नगर में प्रवेश करने वाले दुश्मन के भेदिये को पकड़ लिया है। लगता है कि हमारे पहरेदार अपने कर्तव्य में ज्यादा सावधानी बरत नहीं रहे हैं।"

"यह बात साफ़ मालूम हो जाती है कि दलपति होकर भी तुम्हें खुद दुश्मन के भेदियों को पकड़ने की हालत पैदा हो गई है। ऐसी हालत में वहाँ के पहरेदार क्या कर रहे थे? उस वक़्त वहाँ पर पहरा देने वाले सिपाही को एक हफ़्ते के लिए नौकरी से

दीनानाथ गुप्त

हटा दो और उसकी तनख्वाह काटकर चेतावनी दो।" राजा ने आदेश दिया।

इसके बाद राजा ने मंथर की कर्त्तव्य-निष्ठा के प्रति अपना पूर्ण संतोष प्रकट करते हुए भरी सभा में उसका सम्मान किया। दुश्मन के भेदिये को पकड़ने वाला इस दृश्य को देख एक दम चकित रह गया।

माणिकपुर के मंत्री रुद्रनाग न्याय के पालन में बड़े ही मशहूर थे। उन दिनों में राज कर्मचारी या जनता को अपने सुख-दुख सुनाने के लिए मंत्री के पास सीधे पहुँचने का मौक़ा दिया गया था। पहरेदार ने मंत्री के पास जाकर उसके प्रति जो अन्याय हुआ था, साफ़-साफ़ उन्हें सुनाया।

मंत्री के पास इसके पहले ही मंथर की स्वार्थ बुद्धि का समाचार पहुँच चुका था। लेकिन किसीने भी उनके पास जाकर मंथर के प्रति शिकायत नहीं की थी, इसलिए वे चुप रह गये थे। यह खबर मिलते ही क़ैदखाने में रहने वाले दुश्मन के भेदिये के पास अपने एक नौकर को भेज कर मंत्री ने सच्ची हालत जान ली।

इसके बाद मंत्री ने पहरेदार को समझाया—"तुम फ़िक्र मत करो। मैं देखूंगा कि तुम्हारे प्रति न्याय हो जाय।
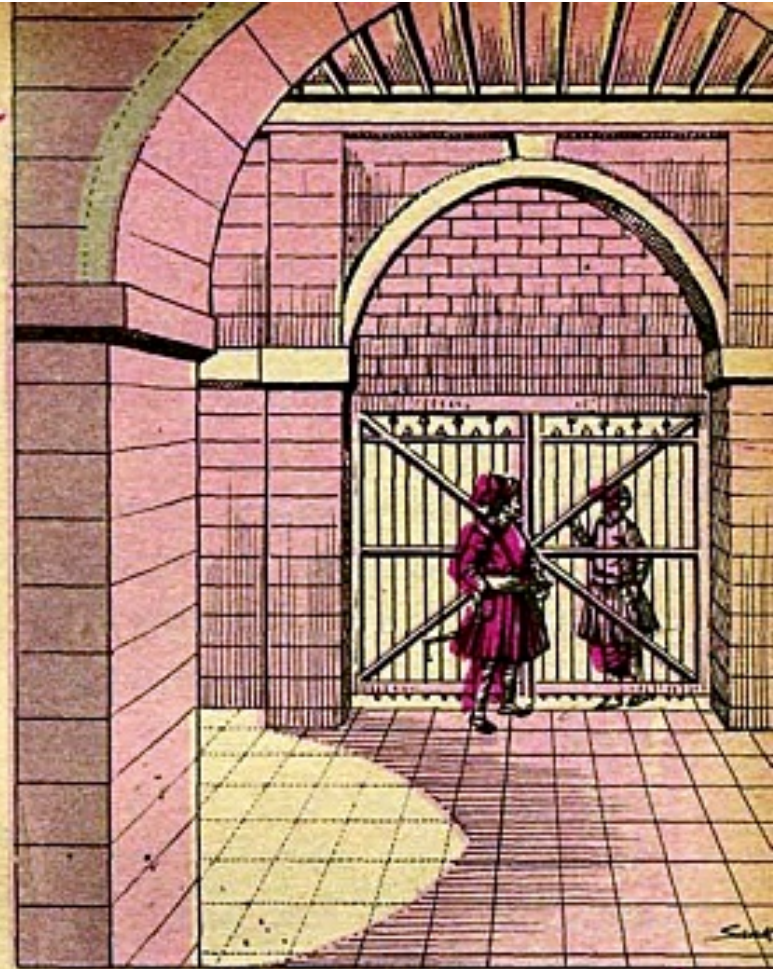
एक हफ़्ते के बाद तुम फिर से नौकरी में लग जाओगें, तब मेरे कहे मुताबिक़ करो।" इन शब्दों के साथ मंत्री ने सिपाही को एक योजना सुनाई।

एक हफ़्ते के बाद पहरेदार ने दुश्मन के एक और भेदिये को पकड़ कर दलपति मंथर के हाथ सौंप दिया। मंथर बड़ा खुश हुआ और उसे समझाया कि उसके पहले उसकी तनख्वाह में जो कटौती हुई, उसे वह भर देगा।

दूसरे दिन जब दरबार लगा हुआ था, तब मंथर दुश्मन के भेदिये को राजा के सामाने हाज़िर करके बोला—"महराज, एक हफ़्ते के अंदर दुश्मन के एक और

भेदिये ने अपना वेष बदलकर हमारे नगर में प्रवेश करने की कोशिश की। पहरेदार अपना कर्तव्य ठीक से निभा नहीं रहे हैं। रात के वक़्त पूर्वी द्वार पर पहरा देनेवाले सिपाहियों की जांच करने में वहां पर पहुँचा। उन लोगों ने दुश्मन के भेदिये को नगर में प्रवेश करते देख उस पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। इस वजह से मुझे खुद इस भेदिये को बंदी बनाना पड़ा।"

ये बातें सुनकर मंत्री रुद्रनाग ने भेदिये से पूछा—"शत्रु देश के नागरिक के वेष में हमारे नगर में प्रवेश करके यहां के रहस्यों को जानने की कोशिश करना कैसी बेवकूफ़ी है, तुम यह बात समझ न पाये। इसीलिए तुम आसानी से पकड़ लिये गये हो।"

भेदिया मुस्कुरा कर बोला—"महा मंत्रीजी, आप मुझे क्षमा करें। मैं शत्रु देश का नागरिक नहीं हूँ। इसी देश का निवासी हूँ। मैं पड़ोसी देश की पोशाक में खुफ़िया का काम पूरा करके हमारे देश को लौट रहा था। पूर्वी द्वार के पहरेदारों को पता है कि मैं कौन हूँ?"

ये बातें सुन राजा ने मंथर की ओर क्रोध भरी दृष्टि दौड़ा कर पूछा—"मंथर, यह सब क्या है?"

मंथर डर के मारे थर थर कांप उठा और उसने अपना सर झुका लिया। मंत्री रुद्रनाग ने उससे पूछा—"तुमने इसके पहले भी दुश्मन के भेदिये को खुद बंदी बनाने की झूठी बातें बताकर राजा से पुरस्कार प्राप्त किये, लेकिन वास्तव में उसे पहरेदार ने बंदी बनाया था। तुमने अपना उल्लू सीधा करने के लिए उस पर झूठ-मूठ के दोषारोप किये। तुम्हारी दुष्ट बुद्धि का भण्डा फोड़ करने के लिए ही मुझे यह योजना बनानी पड़ी।"

मंथर सर झुकाये मौन खड़ा रहा। राजा ने उसी वक़्त उसे पद से हटाया और उसकी जगह दुश्मन के भेदिये को पकड़ने वाले पूर्वी द्वार के पहरेदार को दलपति नियुक्त किया।

सही इलाज

दूर के किसी गाँव से एक वैद्य विजय नगर में पहुँचा, ऐसी जगह उसने अपनी वैद्यशाला खोल दी, जहाँ पर कोई वैद्य न थे। इस बात की सूचना उसने आस-पास के घरों में जाकर दी।

एक हफ़्ता बीता, लेकिन एक भी बीमार आदमी उसके यहाँ इलाज कराने न आया। इस पर वैद्य को आश्चर्य हुआ। इसी बात पर विचार करते वह एक दिन दर्वाजे पर जाकर खड़ा हो गया। तरह तरह की बीमारियों से परेशान होनेवाले कुछ लोग वैद्यशाला के सामने आये, पल भर इधर-उधर नज़र दौड़ाकर वापस जाने लगे।

वैद्य ने उन लोगों को बुलाकर पूछा—"तुम लोग वैद्यशाला तक आकर बिना इलाज कराये वापस क्यों लौट जाते हो?"

बीमार आदमी ने फूलों के गमलों की ओर इशारा करते हुए जवाब दिया—"फूलों के ये गमले बिना पानी के सूखते जा रहे हैं। पैसे देकर ख़रीद लाये गये गमलों की जब आप रक्षा नहीं कर पा रहे हैं, ऐसी हालत में आप हमारी रक्षा क्या कर पायेंगे? यही शंका हमारे मन में पैदा हुई। इसीलिए हम वापस जा रहे हैं।"

वैद्य ने उसी समय पानी लाकर गमलों को सींच दिया। उस दिन से वह बराबर फूलों के पौधों को पानी देने लगा। दो हफ़्ते के अन्दर फूलों के पौधे हरे-भरे नज़र आने लगे। बीमार आदमी भी एक-एक करके वैद्यशाला में इलाज कराने आने लगे।
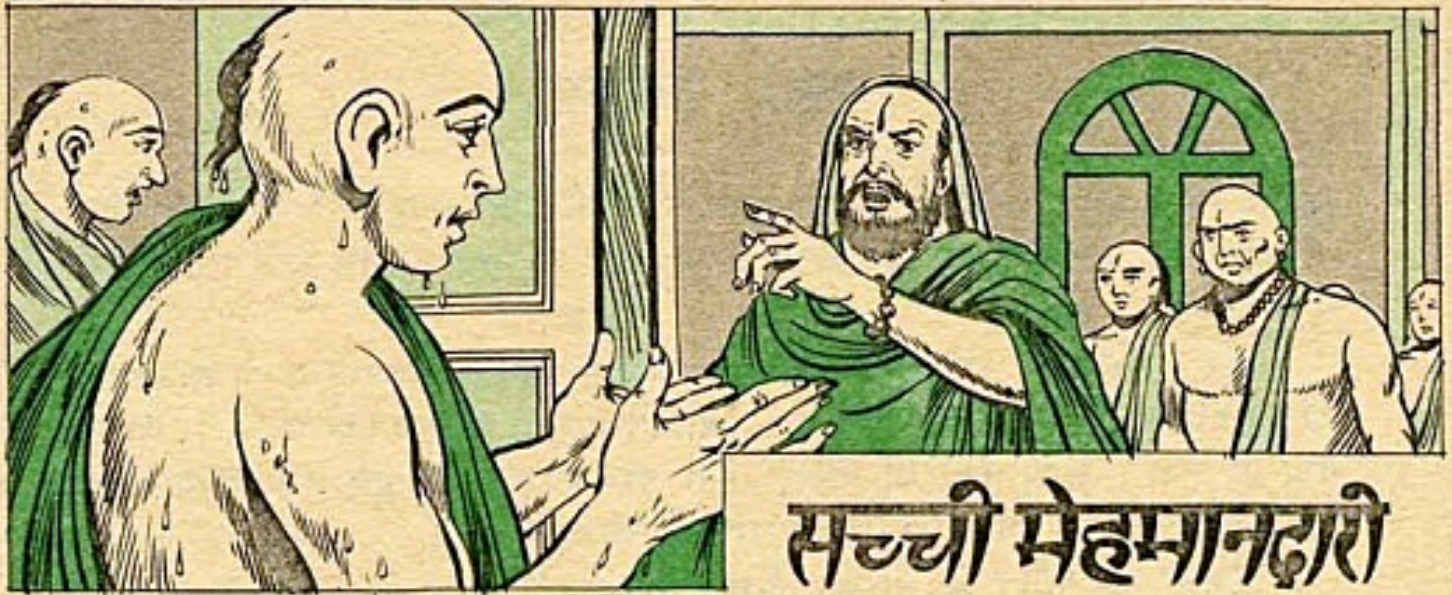
सच्ची मेहमानदारी

सिद्धनाथ नामक एक सन्यासी अपने शिष्यों के साथ देशाटन करते एक दिन शिवपुर नामक गांव के समीप आये। तब तक रात हो गई थी। साथ ही अचानक आंधी चल पड़ी। बादल गरजने लगे। बिजली चमकने लगी। सन्यासी और उसके शिष्य दौड़ कर एक सराय में जा पहुँचे।

सिद्धनाथ को पहले से पता था कि शिवपुर एक संपन्न गाँव है। दस साल पहले वह दक्षिण की यात्रा करते उस गाँव में आया था। उस वक़्त उसकी भारी मेहमानदारी हुई थी। इस वजह से उसका विश्वास था कि रात बीतने पर भी उसे और उसके शिष्यों के लिए उचित रूप में खाने का इंतजाम हो जाएगा। इसी ख़्याल से उसने अपने दो शिष्यों को यह समाचार देने केलिए भेजा।

तब तक एक पहर रात बीत चुकी थी। तिस पर जोर की आंधी–वर्षा हो रही थी। इसलिए कोई भी गृहस्थ उन्हें खाना खिलाने को तैयार न हुआ।

शिष्यों ने गांव से लौट कर सन्यासी को यह खबर दी। इस पर गुस्से में आकर सन्यासी गरज उठा–"उफ़! आखिर यह गाँव इतनी हद तक बिगड़ गया है? तब तो हमें आज रात को उपवास करना पड़ेगा।"

उसी समय पानी में भीगते एक आदमी सराय में आ पहुँचा। सिद्धनाथ की बातें सुनकर उसने प्रणाम किया, अपना परिचय देकर बोला–"साधू महाराज, मेरा नाम राम सहाय है। मैं पड़ोसी गांव से लौटते बरसात में भीग गया। थोड़ी देर सर छुपाने के ख़्याल से इस सराय में आया। मैं इसी गाँव का निवासी हूँ।"

सुरेश उपाध्याय

इस पर सिद्धनाथ खीझ कर बोला–"क्या यह भी कोई गाँव है ? तुम लोग आखिर साधू-संतों की इज्ज़त करना कब सीख लोगे ?"

"महात्मा, मैं एक साधारण गृहस्थ हूँ। इस गाँव में अगर आप जैसे महात्मा पधारते हैं, तो उनके ठहरने और खाने-पीने का इंतजाम करने केलिए गाँव के बुजुर्गों में अकसर होड़ लग जाती है। मुझ जैसे साधारण आदमी को उनके दर्शन करने का मौक़ा तक नहीं देते। आज ऐसी भारी वर्षा का हो जाना मेरेलिए क़िस्मत की बात है। मैं अभी घर जाकर आप लोगों के खाने का इंतज़ाम कर देता हूँ।" राम सहाय ने जवाब दिया।

सिद्धनाथ ने राम सहाय की बातें ख़ुशी से मान लीं। रात के दूसरे पहर के बीतते-बीतते सिद्धनाथ को खबर मिली कि भोजन तैयार हो गया है। सन्यासी अपने शिष्यों के साथ राम सहाय के घर पहुँचा। वहाँ पर एक छोटी सी झोंपड़ी के अन्दर साधारण भोजन का इंतजाम देख सन्यासी गुस्से में आया और बोला–" ओह, इस साधारण भोजन का इंतजाम करने में तुमने इतनी देरी कर दी ? जल्दी-ज़ल्दी खाना परोसने का प्रबंध करो। सब लोग भूख के मारे परेशान हैं।"
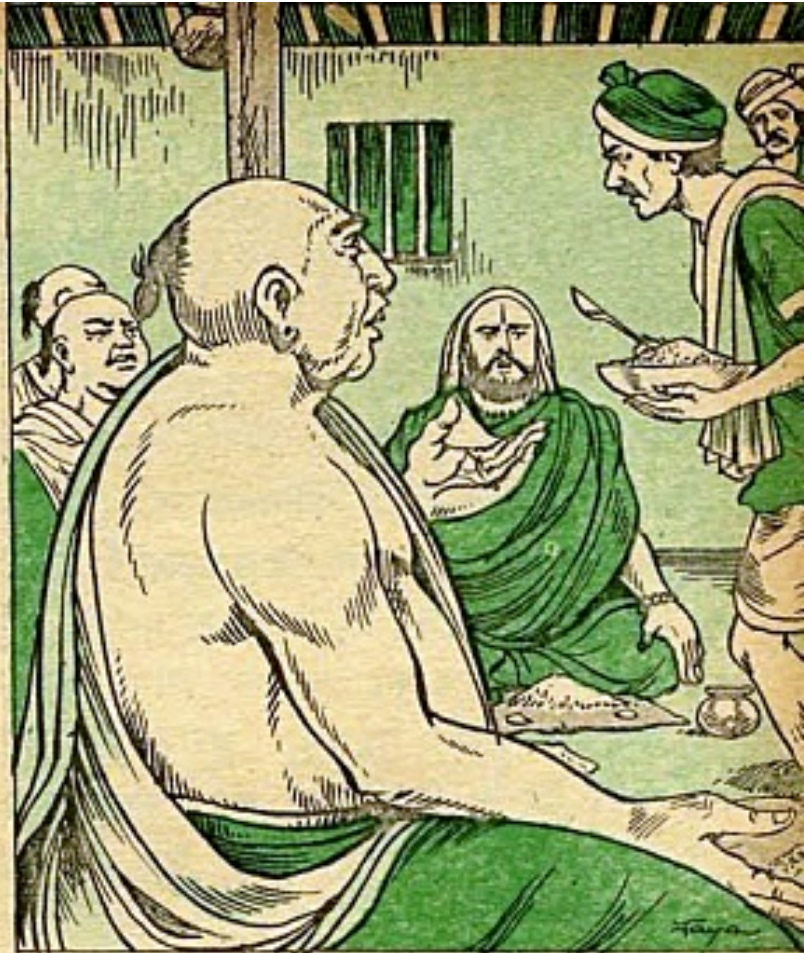
राम सहाय बड़ी अदब के साथ बोला–"महानुभाव, बरसात की वजह से सारी चीज़ों का प्रबंध करने और रसोई बनवाने में थोड़ी देरी जरूर हो गई। कृपया माफ़ कीजिएगा।"

इसके बाद रसोई परोसी गई। सन्यासी के शिष्यों में से एक ने कड़क कर पूछा–"क्या यह भी कोई दाल है ? इसमें नमक कहाँ ?"

दूसरा शिष्य बिगड़ कर बोला–"सब्जी में मिर्च का नाम तक नहीं है।"

तीसरा आदमी मजाक़ करते बोला–"आज ही मेरी समझ में आया कि गृहस्थों के घरों में खीर ऐसी फीकी बनाई जा सकती है।"

इस तरह भोजन में कोई न कोई ऐब ढूंढते सन्यासी और उसके शिष्यों ने जैसे-तैसे खाना समाप्त किया। जब सन्यासी अपने शिष्यों के साथ सराय को लौटने लगे, तब राम सहाय ने सन्यासी से बिनती की–"महात्मा, आप मुझे और मेरे परिवार वालों को क्षमा करें। मेरी पत्नी ने इस अज्ञान में पड़ कर रसोई बनाने में थोड़ी देरी की कि साधारण गृहस्थों की अपेक्षा सर्वस्व को त्यागने वाले साधू-सन्यासी और महात्मा भूख-प्यास को थोड़ी देर के लिए सहन कर सकते हैं। हम इस भ्रम में भी पड़ गये थे कि सन्यासी लोग खाने के स्वाद की फ़िक्र नहीं करते।"

सिद्धनाथ ने राम सहाय की बातों का कोई जवाब नहीं दिया, चुपचाप वहाँ से चला गया।

चार महीने बाद सिद्धनाथ दक्षिण देश की यात्रा समाप्त कर लौटते हुए शिवपुर की उसी सराय में रुका, अपने शिष्यों को राम सहाय के घर में रसोई बनवाने की सूचना देने के लिए भेजा।

राम सहाय सिद्धनाथ के पास पहुँचकर बोला–"महानुभाव, इसके पहले मुझे आपके साथ जो अनुभव हुआ, उसके आधार पर मैं यह बात अच्छी तरह से समझ पाया कि आप जैसे बड़े लोगों का आदर-सत्कार करने की योग्यता मैं नहीं रखता। इसलिए मैं आपकी मेहमानदारी नहीं कर सकता। मुझे माफ़ करें।"

इस पर सिद्धनाथ हंस कर बोला–"राम सहाय, इसके पहले मुझे जो अनुभव हुआ, उसके आधार पर मैं एक महान सत्य को समझ पाया। वह यह है कि गृहस्थों के द्वारा जो आतिथ्य सन्यासियों को मिलता है, वह शादी-ब्याह की दावतों के जैसे न हो।"

साधू के मुंह से ये बातें सुनकर राम सहाय बड़ा खुश हुआ और सिद्धनाथ तथा उसके शिष्यों के लिए अपने घर आतिथ्य दिया।

याचना
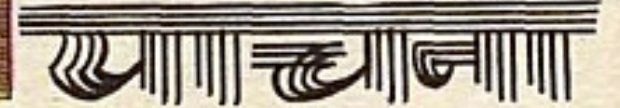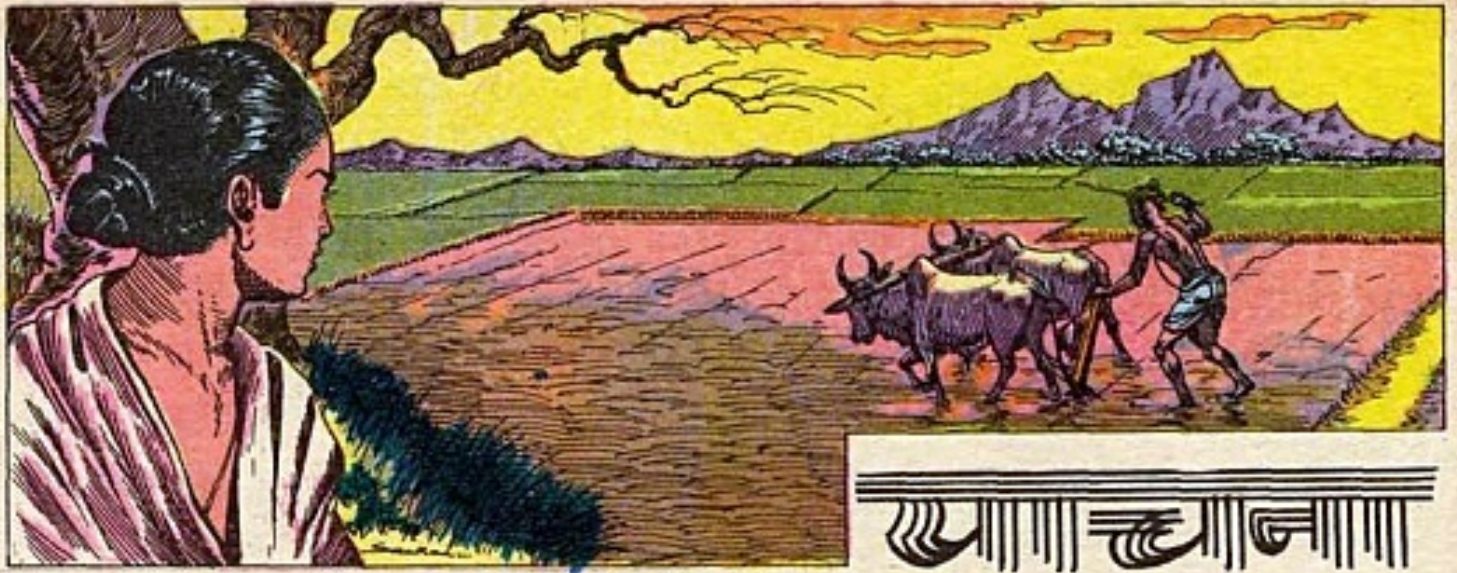
प्राचीन काल में राजा ब्रह्मदत्त काशीनगर पर राज्य करते थे। उन दिनों में बोधिसत्व ने एक गाँव के ब्राह्मण परिवार में जन्म लिया। उसका नाम सोमदत्त था। सोमदत्त का बाप बड़ा ही गरीब था। वह अपने एक बीघे की जमीन में खेती-बाड़ी करके जैसे-तैसे अपना परिवार चला लेता था।

सोमदत्त जब बड़ा हुआ, तब अपने पिता की कड़ी मेहनत को देख वह दुखी हो उठा। उसने अपने माता-पिता को सुखी रखना चाहा, इस वास्ते उसे एक ही उपाय सूझा। वह यह कि किसी तरह से विद्या सीखकर राज दरबार में नौकरी पाने का। वैसे इस हालत में वह भी अपने पिता को खेतीबाड़ी में मदद दे सकता है, मगर एक बीघे जमीन में क्या पैदावर हो सकती है। ये ही सारी बातें सोचकर सोमदत्त अपने पिता से बोला—"बाबूजी, मैं तक्षशिला नगर में जाकर कोई विद्या सीख लूँगा।"

सोमदत्त के बाप ने उसे अनुमति दे दी।

सोमदत्त तक्षशिला में गया। वहाँ पर एक गुरु की सेवा-शुश्रूषा करके विद्या सीख ली, तब अपने गाँव को लौट आया। पर उसका पिता अपने दो बैलों के साथ सुबह से लेकर शाम तक खेत में कड़ी मेहनत कर रहा है। इसे देख सोमदत्त ने सोचा कि अब पल भर भी देरी नहीं करना चाहिए, वह दूसरे दिन ही काशी के लिए रवाना हुआ और राज दरबार में कोई नौकरी प्राप्त की।

इसके थोड़े दिन बाद सोमदत्त के पिता के दो बैलों में से एक मर गया। कई सालों से वह बैल उस परिवार का पोषण करता आ रहा था, अब उसके मरने पर

सोमदत्त के बाप को लगा कि उसका एक हाथ कट गया है। उस हालत में उसने सोचा कि उसका बेटा राज दरबार में नौकरी करता है, राजा से सिफ़ारिश करके उसे एक बैल दिला देगा, इसी ख़्याल से वह काशी जाकर अपने बेटे सोमदत्त से मिला।

सारी बातें सुनकर सोमदत्त अपने पिता से बोला–"बाबूजी, आप और माँ–दोनों बूढ़े हो चुके हैं। अब उस थोड़ी-सी भूमि को लेकर क्यों मेहनत करते हैं? आप दोनों मेरे पास आकर आराम से अपने दिन बिताइये।"

पर सोमदत्त की बातें उसके पिता ने नहीं मानीं! वह हठ करते हुए बोला–"मैं अपनी जन्मभूमि को छोड़कर नहीं आना चाहता। मेरी मौत वहीं पर होगी। तुम एक बैल दिला सकोगे तो मैं खेतीबाड़ी करते मजे से अपने दिन काट सकता हूँ। वहाँ पर मुझे जो शांति मिलती है, वह यहाँ पर न मिलेगी!"

सोमदत्त कुछ ही दिन पहले राज दरबार की नौकरी में लगा था, इसलिए उसके पास एक बैल ख़रीदने लायक़ धन न था। साथ ही राजा से याचना करना भी उचित न होगा। राजा अपने मन में यों सोच सकते हैं कि यह तो हाल ही में नौकरी में लगा, अभी से हाथ फैला रहा है। यों विचार कर सोमदत्त अपने बाप से बोला–"बाबूजी, अगर मैं राजा से
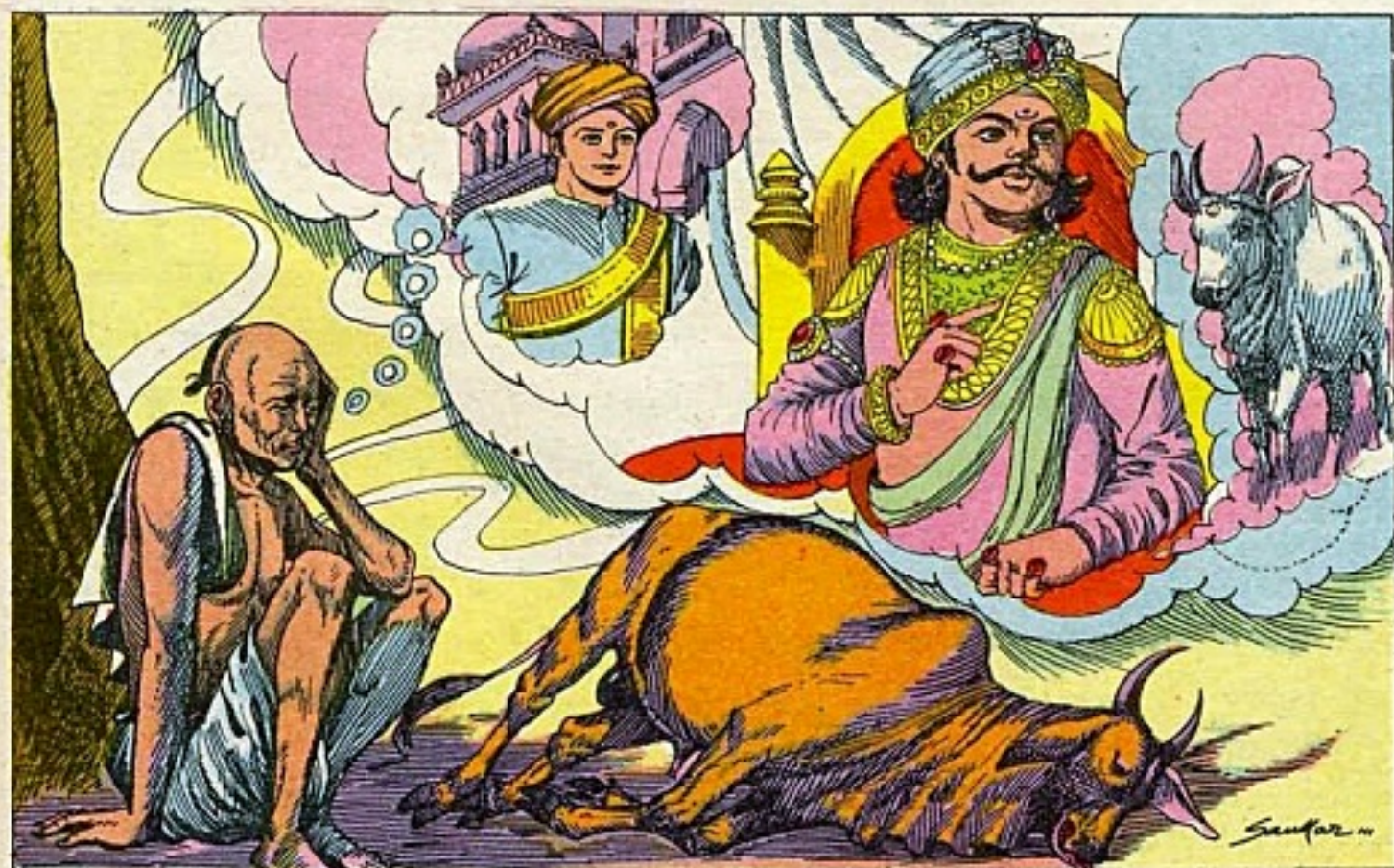
एक बैल की याचना करूँगा तो वे तुरंत पूछ बैठेंगे कि तुम्हें बैल से क्या मतलब? अलावा इसके नौकरी करने वालों के द्वारा याचना करना उचित नहीं है। आपसे तो ये सवाल नहीं कर सकते। इसलिए आप राजा के पास जाकर असली हालत बताइये और उनसे बिनती कीजिए कि वे आप को बैल दें। मैं समझता हूँ कि जरूर वे आप को एक बैल देंगे।"

मगर सोमदत्त के पिता को ये बातें अच्छी न लगीं। उसने अपने बेटे पर जोर देते हुए कहा—"बेटा, मैं एक देहाती हूँ। हल चलाना छोड़कर मैं कुछ नहीं जानता। कहाँ राजा? और कहाँ दरबार? और कहाँ मैं? दरबार में क़दम रखने पर शायद मेरे मुँह से बोल न फूटे! राजा के साथ कैसे बात करनी है, उनके साथ कैसा बर्ताव करना है? ये सारी बातें मैं क्या जानूँ? नहीं; नहीं; तुम्हीं किसी तरह से मेरा काम करवा दो।"

"तब तो मैं एक उपाय करता हूँ। मैं एक श्लोक लिखकर देता हूँ। दो-तीन दिनों में उसे अच्छी तरह से याद करके राज दरबार में जाकर सुनाइये। आपका काम बन जाएगा!" यों सोमदत्त ने अपने बाप को हिम्मत बंधाई। इसके बाद उसने एक श्लोक लिखकर अपने पिता के द्वारा कंठस्थ करवाया।

"द्वे में गोणा, महाराज,
येहि खेत्तं कसाम से
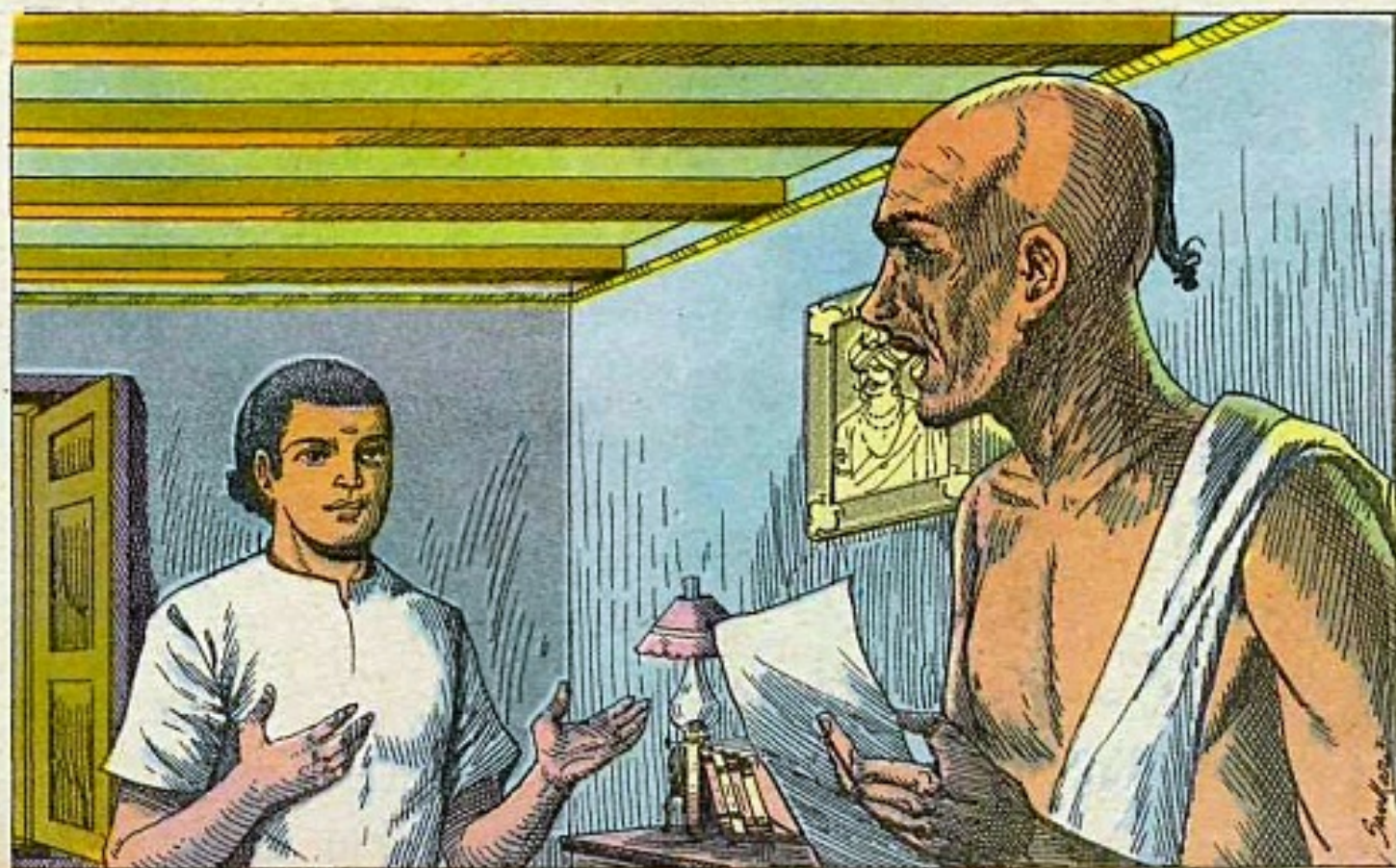
तेसु एको मतोदेव,
दुतियं देहि खत्तिय ।।

इसका मतलब है–"महाराज, मेरे पास दो बैल थे। मैं उनसे खेतीबाड़ी चलाता था। प्रभू, उनमें से एक मर गया, इसलिए मुझे दूसरा बैल दिलाइये।"

बूढ़े ने बड़ी मेहनत के साथ इस श्लोक को कंठस्थ कर लिया। एक दिन सोमदत्त अपने पिता को दरबार में ले गया। अपने बेटे के समझाने के मुताबिक़ बूढ़ा राजा और मंत्रियों को प्रणाम करके, हाथ बांध कर विनयपूर्वक खड़ा हो गया।

"तुम कौन हो? क्या चाहते हो?" राजा ने पूछा। बूढ़े ने झट कंठस्थ किया हुआ श्लोक सुनाया। मगर उस घबड़ाहट में श्लोक थोड़ा बदल कर इस रूप में बूढ़े के मुँह से निकला–

द्वे में गोणा, महाराज,
येहि खेत्तं कसामसे;
तेसु एको मतोदेव,
दुतियं गण्ह खत्तिय।"

यह श्लोक सुनकर सारे दरबारी हँस पड़े। सोमदत्त ने लज्जा के मारे अपना सर झुका लिया। क्योंकि उसके बाप ने घबराकर "मुझे दूसरा बैल दिलाइये।" कहने के बदले यों कह दिया–"मेरे दूसरे बैल को ले लीजिए!"

इस पर राजा ने मुस्कुराते हुए पूछा–"तुम अपने बैल को मुझे देने के लिए ही अपने घर से इतनी दूर चले आये हो?"

"महाराज, चाहे तो आप उसे ले लीजिए। क्योंकि उसी की वजह से यह सारा बखेड़ा खड़ा हो गया है।" इन शब्दों के साथ बूढ़े ने राजा को सारा वृत्तांत सुनाया।

सोमदत्त के नीतिपूर्ण व्यवहार पर राजा बहुत खुश हुए। क्योंकि उनके दरबार में जो लोग हैं, वे सब छोटी-मोटी बात को लेकर राजा से याचना करने वाले थे। मगर सोमदत्त ने ऐसा नहीं किया। इस पर राजा ने आठ जोड़े बैलों को खूब सजवा कर सोमदत्त के पिता को दान किया।
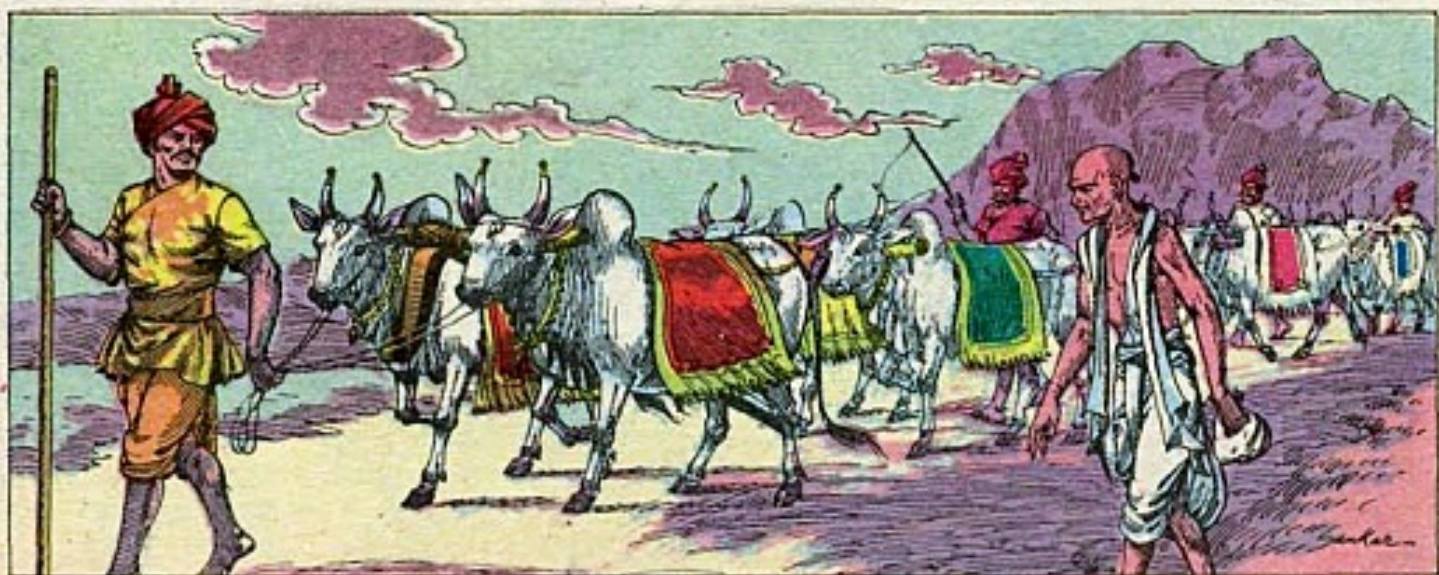
For the first time in India!
Superman & Batman in the same comic!
New, exciting Dolton Comics pack every fortnight with thrilling adventures...
• 32 full colour pages of mystery and excitement—in every issue!
• A special opening number telling you everything you should know on Superman & Batman—their origins, their very first adventures... something no other comic in India has ever given you!
• A host of follow-up issues introducing other well-known favourites... Robin, Green Arrow, Flash, Super-girl, Aquaman, Atom, Green Lantern, Lois Lane...
• Plus! It's the most easily available comics magazine you've ever read! Reserve your copy now.
At just Rs. 1.75 a copy, you're sure going to build up a great collection!
SUPERMAN ®
&
BATMAN ®
DOLTON COMICS
DC
The new fortnightly at just Rs. 1.75 !
DOLTON PUBLICATIONS
Madras-600 026

सुलताना रजिया-२

दिल्ली की मलिका सुलताना रजिया साहस, पराक्रम और न्याय-निर्णय में बेजोड़ थी। उसके व्यक्तिगत चरित्र के बारे में दूसरे लोगों के विचारों की वह बिलकुल परवाह न करती थी। वह मर्द जैसे पोशाक पहन लेती, घुड़ सवारी उसके लिए बड़ी प्रिय थी।

रजिया घुड़ सवारी करते एक बार दुर्घटना का शिकार हो नीचे गिरनेवाली थी। उसे याखूत नामक अबिसीनिया के घुड़ सवारी दल के नेता ने बचाया। इस कारण उसके प्रति रजिया के दिल में स्नेह भाव पैदा हुआ। याखूत बड़ा होशियार और अक़्लमंद था।

धीरे धीरे रजिया का स्नेह भाव याखूत के प्रति प्यार में बदल गया। वे दोनों अकसर राजमहल और शाही बगीचे में परस्पर मिला करते थे। उनका यह मिलन दरबार के अन्य सरदारों के क्रोध का कारण बन गया।

रजिया के दरबार में तुर्की जाति के जो सरदार थे, वे ज्यादा बलवान थे और दरबार में उनका प्रभाव कहीं अधिक था। वे लोग अबिसीनिया के निवासी याखूत से मन ही मन जलने लगे। उन लोगों ने निश्चय किया कि रजिया को दिल्ली की गद्दी से उतारकर उसकी जगह एक ऐसे आदमी को बिठाये जो उनके इशारे पर चलनेवाले हो।

सरदारों के इस षड़यंत्र का पता लगाकर रजिया की सहेलियों ने यह ख़बर उसे दी। मगर रजिया ने उन्हें बताया कि उसने कोई अपराध नहीं किया है, इसलिए उसे उन षड़यंत्रकारियों से डरने की कोई जरूरत नहीं है।

इससे रजिया चुप न रही, उसने षड़यंत्रकारियों को बुलवाकर समझाया— "दिल्ली की सुलताना के रूप में मैं अपनी जिम्मेदारी अच्छी तरह से जानती हूँ। मुझे किसके साथ दोस्ती करनी है और किसके साथ दुश्मनी मोल लेनी है, इसे समझाने का हक़ तुम लोगों को नहीं है।" लेकिन ईर्ष्या से जलनेवाले सरदारों को रजिया की सचाई जंची नहीं।

एक दिन अचानक तुर्की सरदारों ने याकूत के घर को घेर लिया। याकूत ने तलवार खींचकर अपनी आत्मरक्षा करने की कोशिश की, लेकिन षड़यंत्रकारियों ने एक साथ उस पर हमला करके उसे मार डाला। इस तरह रजिया का स्नेह पात्र निर्दोषी युवक याकूत मारा गया।

इसके बाद षड़यंत्रकारियों ने रजिया को क़िले के एक कमरे में बंदी बनाया और तुर्की सैनिकों को पहरे पर बिठाया।

रजिया ने क़ैदखाने से तुर्की सरदारों के नेता अल्टूमिया को एक चिट्ठी लिखी। अल्टूमिया ने गुप्त रूप से उससे मुलाक़ात की। रजिया की खूबसूरती पर मुग्ध हो अल्टूमिया ने उसे बचाने के लिए अपनी जान तक देने की क़सम खाई।

इसके बाद अल्टूमिया ने एक छोटे सैनिक दल के साथ रजिया के बन्दीखाने को घेर लिया और सारे पहरेदारों को भगाया। इस पर रजिया ने उसके साथ शादी की। इस बीच रजिया के एक सौतेले भाई ने दिल्ली की गद्दी पर अधिकार कर लिया।

अल्टूमिया ने किसी तरह से रजिया को फिर से दिल्ली की गद्दी पर बिठाने का निश्चय किया। वह रजिया को साथ लेकर थोड़ी सेना के साथ दिल्ली पर चढ़ाई करने निकल पड़ा। यह ख़बर मिलते ही तुर्की सरदारों ने उनका सामना करने के लिए बड़ी सेना का संगठन किया।

थोड़े दिन बाद दोनों दलों के बीच भयंकर लड़ाई हुई। रजिया और अल्टूमिया ने उस लड़ाई में अपने अद्भुत साहस का परिचय दिया। मगर शक्तिशाली दुश्मन की ही जीत हुई। तुर्की सरदारों ने रजिया और अल्टूमिया को बंदी बनाकर उनकी हत्या की। इस प्रकार दुनिया के इतिहास में मशहूर सुलताना रजिया की ज़िंदगी समाप्त हुई।

हिम्मत का राज

गंगापुर में चार दोस्त थे। उनमें जयगुप्त बड़ा ही डरपोक था। रात के वक्त घर से निकलने से वह डरता था।

एक दिन जयगुप्त के दोस्त उसका मजाक़ उड़ाने लगे–"तुम जैसे कायर आदमी दूसरा कोई न होगा। अगर कोई तुम्हारी हिम्मत की परीक्षा लेने के लिए दाँव लगायेगा तब तुम्हारी कायरता प्रकट हो जाएगी।"

"कोई अगर नाम के वास्ते दाँव लगाना चाहे तो मैं मानूंगा नहीं, अगर खासी अच्छी रक़म का दाँव लगावे, तब जाकर मैं अपनी हिम्मत का जरूर परिचय दूंगा।" जयगुप्त ने चुनौती दी।

"ऐसी बात है ? तब तो हम लोग सौ रुपये का दाँव लगाते हैं। रात के वक्त अगर तुम अकेले श्मशान तक हो आओगे तो हम लोग तुमको सौ रुपये देंगे। वरना तुम्हें हमें सौ रुपये देना होगा।" दोस्तों ने शर्त रखी।

जयगुप्त ने उस शर्त को मान लिया। आधी रात के वक्त वह श्मशान तक हो आया। दोस्तों से सौ रुपये चुकाने को कहा।

दोस्तों ने सौ रुपये जयगुप्त को देकर पूछा–"संध्या के बाद तुम घर से बाहर निकलने से डरते हो, ऐसी हालत में तुम अकेले श्मशान तक कैसे हो आये ?"

"यह दाँव पाँच-दस रुपये का नहीं, पूरे सौ रुपये का है। मुझे पहले से ही मालूम था कि मेरे श्मशान तक जाने व लौटने की जाँच करने के लिए तुम तीनों थोड़ी देर बाद मेरे पीछे जरूर चलोगे।" जयगुप्त ने जवाब दिया।

दो कवि

रामशास्त्री एक प्रसिद्ध कवि था। उसन अपनी कविता के द्वारा कई लोगों को प्रसन्न किया और अनेक पुरस्कार प्राप्त किये। इस वजह से उसका घमण्ड भी बढ़ता गया।

गोविंद शास्त्री भी एक अच्छा कवि था, लेकिन परिस्थितियाँ उसके अनुकूल न थीं, इस कारण उसे इतनी प्रसिद्धि न मिली जितनी रामशास्त्री को मिली। वैसे वे दोनों एक ही गाँव के निवासी थे।

रामशास्त्री अकसर गोविंदशास्त्री से कहा करता था–"तुम्हारी कविता के अंदर थोड़ी सी कमियाँ हैं, अगर तुम उन्हें सुधार सके तो तुम मेरे जैसे लोकप्रिय बन सकते हो।"

गोविंदशास्त्री को रामशास्त्री की बातें जंचती न थीं। उसका विचार था कि परिस्थितियाँ उसके अनुकूल नहीं हैं, इस वजह से उसकी कविता को लोकप्रियता प्राप्त नहीं हो रही है; वैसे वह रामशास्त्री किसी बात में कम नहीं है।

एक बार विष्णुपुर के जमीन्दार ने दशहरे के संदर्भ में एक छोटा सा कवि-सम्मेलन करना चाहा और रामशास्त्री से उसका अध्यक्ष बनने की प्रार्थना की।

यह खबर मिलते ही कई छोटे-बड़े कवि जमीन्दार से पुरस्कार पाने के ख्याल से रामशास्त्री के आश्रय में पहुँचे। मगर गोविंदशास्त्री उससे मिलने नहीं गया। उसका विश्वास था कि रामशास्त्री से भेंट न करने पर भी वह उसे जरूर कवि सम्मेलन में भाग लेने केलिए निमंत्रण भेज देगा।

पर रामशास्त्री ने गोविंदशास्त्री को निमंत्रण नहीं दिया। उल्टे उन्हीं लोगों को कवि सम्मेलन में बुलाया जो उसके आश्रय में गये थे। इस पर गोविंदशास्त्री को रामशास्त्री पर बड़ा गुस्सा आया।

कमला सिसोदिया

रामशास्त्री ने कवि-सम्मेलन से लौट कर गोविंदशास्त्री को वहां की सारी बातें सुनाईं; उन बातों का सारांश यही था कि विष्णुपुर के जमींदार ने बहुत सारे कवियों को छोटे बड़े पुरस्कार दिये और रामशास्त्री को एक हज़ार रुपये का नक़द पुरस्कार दिया, साथ ही उसकी कविता की प्रशंसा करते में लंबा भाषण भी दिया।

आखिर अपनी आत्मस्तुति करते रामशास्त्री बोला–"मेरी ज़िंदगी में यह ऐसी घटना है जो कभी भुलाई नहीं जा सकती। कोई भी कवि इससे बढ़ कर और क्या चाह सकता है?"

पहले ही गोविंद शास्त्री नाराज़ था, अब इन बातों ने उसके क्रोध को और भड़काया। फिर भी वह अपने क्रोध को प्रकट किये बिना बड़ी शांति के साथ बोला–"क्या तुम कभी अमरपुरी के जमींदार से मिले?"

"नहीं, लेकिन बताओ, उन के भीतर ऐसी कौन सी विशेषता है?" रामशास्त्री ने पूछा।

"कहा जाता है कि वे कविता की खूबियों का सही ढंग से मूल्यांकन करते हैं। उन्होंने कई कवियों की कविताएं सुनकर आनन्द जरूर उठाया है, उनका सम्मान भी किया है, मगर आज तक खुद किसी कवि की तारीफ़ नहीं की है। अगर वे तुम्हारी कविता की प्रशंसा में एक भी वाक्य बोले, तो मैं तुमको सचमुच एक महा कवि मानूंगा।" गोविंदशास्त्री ने चुनौती दी।
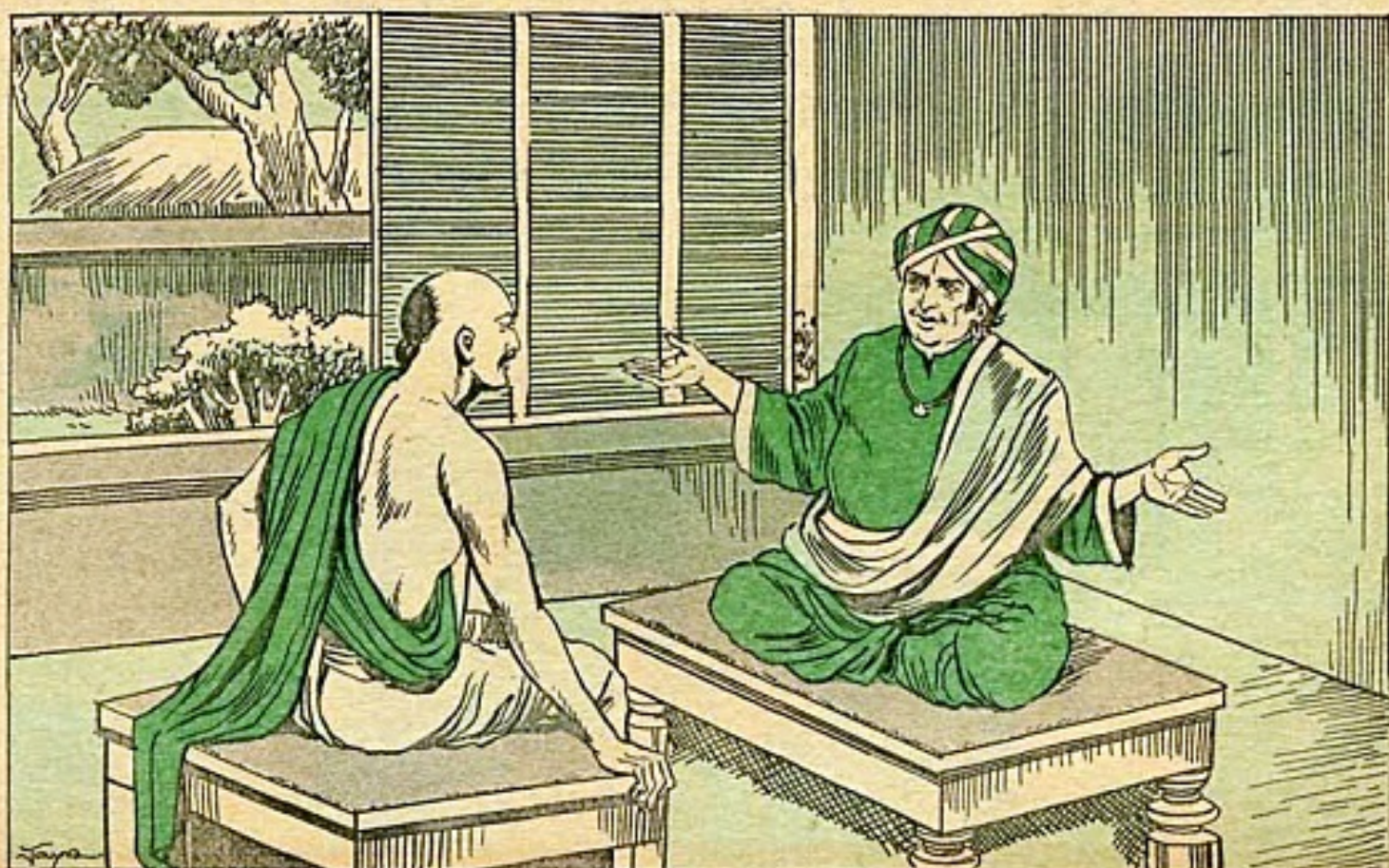
'रामशास्त्री गुस्से में आकर बोला-" ऐसा मालूम होता है कि तुम मेरे साथ कोई दाँव लगाने के लिए तैयार होकर आये हो ?"

"तुमने दाँव की बात उठाई, इसलिए मैं तुम्हारे साथ दाँव लगाना चाहूँगा। अमरपुरी के जमींदार तुम्हारी कविता सुनकर तुम्हारी प्रशंसा में एक भी वाक्य बोले तो मैं तुम्हें एक हज़ार रुपये दूँगा। नहीं तो तुम्हें मुझे एक हज़ार रुपये देना होगा।" गोविंदशास्त्री ने कहा।

"आज तक मैं अपनी जिंदगी में 'हार' नामक शब्द ही नहीं जानता, मैं कल सुबह ही अमरपुरी के लिए रवाना हो जाऊँगा।" रामशास्त्री ने क्रोध में आकर कहा।

"अच्छी बात, यह घटना तुम्हारी ज़िदगी में कभी न भूलने वाली साबित होगी।" गोविंदशास्त्री ने कहा।

दो दिन बाद रामशास्त्री गोविंदशास्त्री से मिलकर बोला-"देख तो लो, मैं एक हज़ार रुपये जीत गया हूँ। अमरपुरी के जमीन्दार ने मेरी कविता की प्रशंसा करते अपने हाथ से यह प्रमाण पत्र लिख कर दिया है।" ये शब्द कहते रामशास्त्री ने गोविंदशास्त्री के हाथ एक कागज़ दिया।

गोविंदशास्त्री मुस्कुराते हुए बोला-"मैं यह नहीं कहता कि यह उनकी लिखावट नहीं है। मेरा दाँव था कि जमीन्दार अपने मुँह से तुम्हारी कविता की प्रशंसा करे। ऐसा नहीं हुआ है न? इसलिए तुम हार गये। अब एक हज़ार रुपये निकालो।"

रामशास्त्री उदास होकर बोला-"अगर मुझे पहले मालूम हो जाता कि जमीन्दार गूंगा है, तो मैं इस दाँव को न मानता। जो हुआ, हो गया। दाँव की रक़म कल ला दूँगा।"

गोविंदशास्त्री अपनी हंसी पर ज़ब्त करते हुए बोला-"देखा है न, तुम एक महीना भी पूरा होने के पहले अपनी जिंदगी में कभी भुलाई न जाने वाली दो घटनाएँ देख चुके हो।"

दो भूत

राधाबाई मायके से अपने ससुराल चली गई, मगर एक हफ़्ता भी पूरा होने के पहले अपने पीहर लौट आई। इसे देख राधाबाई की माँ अनसूया ने अचरज में आकर पूछा—"बेटी, तुमने खबर तक नहीं की, इस वक़्त अचानक कैसे लौट आई?"

राधाबाई किराये की गाड़ी से उतरते हुए बोली—"मुझे इसी वक़्त एक हज़ार रुपये चाहिए। नई खाट, कुर्सियाँ और मेज़ खरीद लूँगी। उन्हें देख कर रुक्मिणी ईर्ष्या से जलकर भस्म हो जाएगी।"

अनसूया को लगा कि उसके सर पर पहाड़ टूट पड़ा है। एक हफ़्ते पहले ही बेटी और दामाद त्योहार पर आकर क़ीमती कपड़े और गहने ले गये थे। अब हफ़्ते भर में फिर से एक हज़ार की माँग करे तो कहाँ से लाया जाय। फिर भी अनसूया अपनी घबराहट प्रकट किये बिना बोली—"तुम अभी खाना खा लो, बाद को आराम से सारी बातें कर सकते हैं।"

राधा का शहर से जल्दी लौटकर अपनी माँ से एक हज़ार रुपये माँगने के पीछे एक खास कारण है। राधाबाई की गली की सभी औरतें उसे बड़ी ख़ूबसूरत औरत मानती थीं, अलावा इसके इस बात के लिए भी उस की खूब तारीफ़ करती थीं कि उसके घर में कई कीमती सामान हैं और वह अपने घर को ख़ूब अच्छी तरह से सजा-संवार कर रखती है।

लेकिन इधर उसके पड़ोस में रुक्मिणी नामक एक युवती ने अपने पति के साथ आकर परिवार बसाया। उसका बदन एक दम गोरे रंग का था और उसकी वेणी खूब लंबी और काली थी। देखने में वह बड़ी अच्छी लगती थी। तिस पर वह अपने साथ नक्काशी की गई चारपाई

सरोजा भार्गव

और अच्छे सामान भी लाई थी। इस कारण से सब औरतें उसके सामने ही रुक्मिणी की सुंदरता की तारीफ़ करते थकती न थीं।

ये सारी बातें सुनने पर राधाबाई के मन में रुक्मिणी के प्रति ईर्ष्या पैदा हो गई। रुक्मिणी ने दो-तीन बार राधाबाई से बात करने की कोशिश की, मगर उसने अनिच्छा से अपना मुँह मोड़ लिया था। उसने अपने पति से नई चारपाई, कुर्सी, मेज़ वगैरह खरीदने की सिफ़ारिश की, उसने गुस्से में आकर उसका मुँह बंद किया था। इस पर वह नाराज़ होकर रुपयों के वास्ते अपने मायके लौट आई।

अनसूया ने अपनी बेटी को खाना परोसते उसके दिल की बात ताड़ ली और बोली—"बेटी, तुम रुक्मिणी से होड़ क्यों लगाती हो? यह तो ऐसा है, जैसे सियार को देख बंदर ने अपनी पूँछ तोड़ ली।"

"मैं कोई बंदर नहीं हूँ। माँ, एक हज़ार रुपये फेंक दो, मैं अपने रास्ते चली जाऊँगी।" राधाबाई बोली।

"तुम शायद यह सोचती हो कि हमारे पिछवाड़े का बादाम पेड़ रुपये पैदा कर रहा है। मेरे पास इस वक़्त एक कौड़ी भी नहीं है। तुम्हारे बाबूजी भी गाँव में नहीं हैं। अगर वे होते भी, तो इस वक़्त तुरत तुम्हारे हाथ एक हज़ार रुपये धरने की ताक़त उनमें नहीं है।" अनसूया ने गुस्से में आकर कहा।

राधाबाई बिगड़ गई। थाली में खाना छोड़कर उठ खड़ी हो गई और उसी वक़्त अपने पति के घर जाने को तैयार हो गई।

"सूरज के डूबने में अभी ज़्यादा देर नहीं है, तिस पर तुम्हें जंगल के रास्ते से होकर जाना होगा। तुम्हारे शहर पहुँचते-पहुँचते आधी रात हो जाएगी। सवेरे क्यों नहीं जाती?" अनुसूया ने गिड़गिड़ा कर अपनी बेटी को समझाने की कोशिश की।

फिर भी राधाबाई ने अपनी माँ की बातें नहीं मानीं, वह उसी वक़्त किराये

की गाडी ठीक करके शहर के लिए चल पड़ी। अंधेरे के फैलते-फैलते गाड़ी जंगल के बीच पहुँची। राधाबाई डर के मारे चारों तरफ़ नज़र दौड़ा कर गाड़ी वाले से बोली–"यहीं आस पास में एक उजड़ा हुआ कुआं और जटाओं वाला बरगद का पेड़ होना चाहिए। कहते हैं कि वहाँ पर दिन के वक़्त भी भूत लड़ते-झगड़ते दिखाई देते हैं; भाई, तुम घोड़े को जरा तेजी के साथ हांक दो।"

"बहनजी, ये भूत हम जैसे अच्छे लोगों को नहीं छेड़ते। धन के लोभी, ईर्ष्यालू और कंजूस लोगों को ही सताते हैं। आप थोड़ी देर झपकी लीजिए, आप की आँख खुलने तक गाड़ी शहर में आप के घर के सामने पाई जाएगी।" गाड़ी वाला बोला।

इसके बाद राधाबाई गाड़ी में एक तरफ़ लुढ़क पड़ी और आँखें मूंद लीं। थोड़ी देर बाद एक झटके के साथ गाड़ी रुक गई। राधाबाई चौंक पड़ी और उसने आँखें खोल कर देखा। गाड़ी में जुता हुआ दुबला-पतला घोड़ा फेन उगलते नीचे गिरी हुई है।

गाड़ी वाला घोड़े की ओर परख कर देखते हुए बोला–"शायद इसे कोई बड़ी बीमारी हो गई है। हम तो लगभग शहर तक पहुँच गये हैं। इसलिए आप थोड़ी तक़लीफ़ उठाकर घर तक पैदल चलिये। मैं बाजूवाली इस बस्ती में जाकर पशु वैद्य को बुला लाता हूँ।"
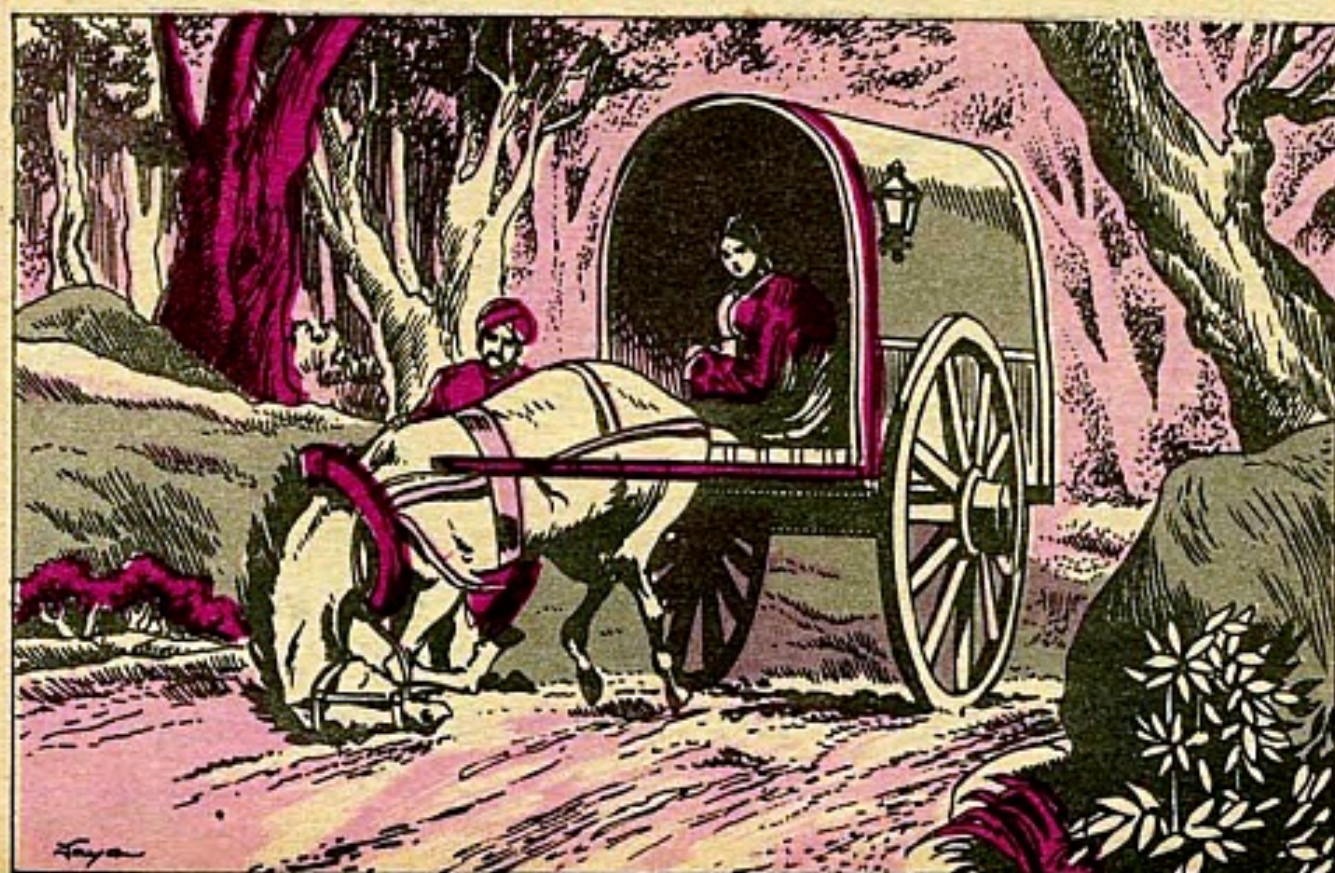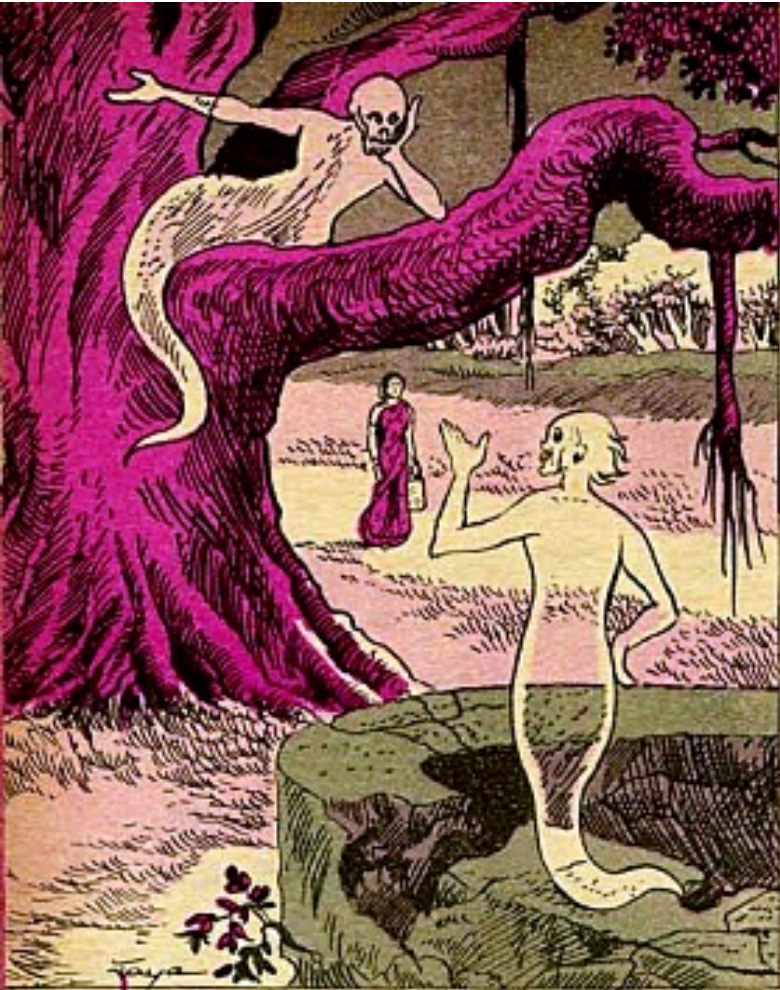
राधा डरते-डरते चल पड़ी। वह थोड़ी ही दूर पहुँची थी कि उसे एक बहुत बड़ा जटाओं वाला बरगद और उसके नीचे कुआँ दिखाई दिया। बरगद की एक डाल पर एक भूत था। कुएं की जगत पर एक और भूत बैठा था। दोनों आपस में वाद-विवाद कर रहे थे। बरगद वाला भूत कह रहा था—"मैं ऊँचाई पर रहता हूँ। कलरव करते पक्षी ऊपर उड़ते हैं। ठण्डी हवा ऊपर ही चलती है, इसलिए मैं बड़ा हूं।"

"मैं जमीन से लगा रहता हूँ। महान वृक्षों के लिए भी जमीन ही आधार भूत है। उनमें प्राण फूंकने वाला पानी भी जमीन पर बहता है। इसलिए मैं बड़ा हूँ।" कुएँ वाला भूत बोला।

"आयु के समाप्त होने पर सब को ऊपर आना होगा।" बरगद वाला भूत बोला।

"यह तुम क्या कहते हो? उन सब को आखिर मिट्टी में मिलना होगा।" कुएँ वाले भूत ने बताया।

इस बीच डरते-चौंकते उस प्रदेश को पार करने वाली राधाबाई उनकी आँखों में पड़ी।

"लो, देखो, कोई औरत उधर चली जा रही है। लड़ाई-झगड़े में उसका अनुभव ज्यादा है। हम उसी से पूछेंगे कि हम दोनों में कौन बड़ा है?" यों निश्चय कर दोनों भूतों ने राधाबाई को पुकारा।

राधाबाई भाग कर नहीं जा सकती थी; इसलिए लाचार होकर हिम्मत करके उनके समीप पहुँची—"बहन, तुम बताओ, हम दोनों में कौन बड़ा है?"

राधा को लगा कि वे भूत हानि पहुँचाने वाले नहीं हैं। उसी वक़्त उसके दिमाग में एक विचार आया। वह अपना कंठ संवार कर बोली—"बड़प्पन अपनी जगह को लेकर नहीं, शक्ति और सामर्थ्य पर आधारित होता है। मैं इस बात पर निर्णय कर सकती हूँ कि बरगद वाला भूत

पेड़ की डालों को हिलाकर कितनी सोने की मुद्राएँ गिरा सकता है और कुएँवाला भूत बाल्टी में कितनी मुद्राएँ ऊपर भेज सकती हैं।"

इसके बाद बरगद वाले भूत ने पेड़ की डालें हिला दीं। खन-खन करते सोने की मुद्राएँ गिर पड़ीं। कुएँ वाले भूत ने बाल्टी भर मुद्राएँ ऊपर भेज दीं। उन सबको राधाबाई ने अपने हाथ की थैली में डाल दीं।

"सोने की मुद्राओं की बाबत तुम दोनों बराबर हो। इसलिए मैं एक परीक्षा और लेती हूँ। मेरे घर के बाजू में एक दंपति है। पति अपनी पत्नी के साथ एक नौकर जैसा व्यवहार करता है। उसे मानो कोई कीडा-मकोडा मानता है। वैसे उसकी देह सोने के रंग जैसी पीली है, उसकी काली वेणी बड़ी लंबी और नाग जैसी है। शायद तुम लोगों को पता न हो, मर्द लोग काले शरीर और सफ़ेद बालों को ज्यादा पसंद करते हैं! इसलिए तुम में से एक उसके बदन को काला बनाओ और दूसरे उसके बालों को सफ़ेद बना लो। इसी के आधार पर मैं यह निर्णय करूँगी कि तुम दोनों में से कौन बड़ा है। रुक्मिणी का पति भी उसे ज्यादा प्यार करेगा।" राधाबाई ने समझाया।
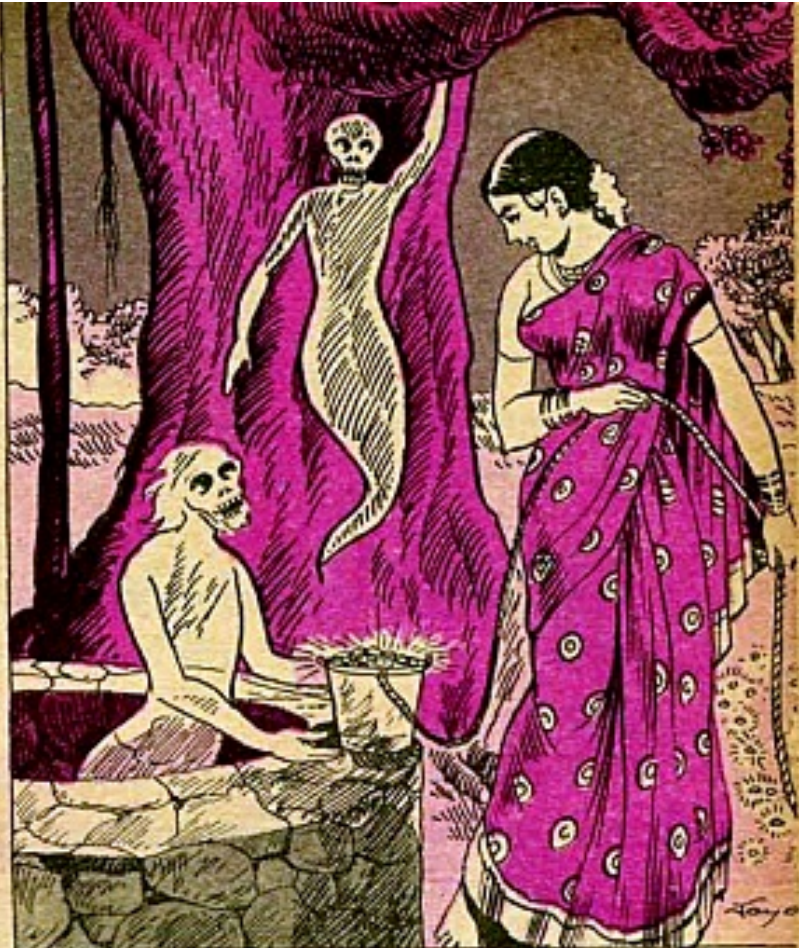
राधा के मन में यह कुबुद्धि थी कि रुक्मिणी कुरूपिणी बन जाय तो उसे देख मन ही मन खुश हो जाये।

भूतों ने बताया कि पल भर में दोनों काम पूरा करके दिखायेंगे। लेकिन राधाबाई के वहाँ से निकलते ही उनके मन में शंका पैदा हो गई कि राधाबाई ने वैसे पड़ोसी औरत का नाम तो लिया, पर यह नहीं बताया कि वह बाईं तरफ़ की या दाईं ओर की? इसलिए भूतों ने सोचा कि उनके प्रति ऐसा अच्छा सलूक करने वाली राधाबाई पर ही उन दोनों चीज़ों का प्रयोग करे जिस से उसका पति उसके साथ पहले से कहीं अच्छा सलूक करेंगे।

आधी रात के क़रीब किसी के द्वारा दर्वाजे पर दस्तक देने की आहट पाकर राधाबाई का पति उठकर चला आया और किवाड़ खोलते ही सामने उसे देख डर के मारे चीख उठा।

"आप डरते क्यों हैं? मैं राधाबाई हूँ!" राधा बोली।

"तुम राधा हो या डाइन? अरे यह काला चेहरा और सफ़ेद बाल कैसे...?" यों कहते राधाबाई का पति किवाड़ बंद करने को हुआ।

राधाबाई ने भांप लिया कि रुक्मिणी के बदले भूतों ने उसे कुरूपिणी बना दिया है, वह चीखकर नीचे गिर पड़ी।

"बहनजी, आप चिल्लाती क्यों हैं? क्या आपने कोई बुरा सपना देखा है?" इन शब्दों के साथ किसी के थपथपाने पर राधाबाई ने आँखें खोल दीं।

अब किराये की गाड़ी जंगल को पारकर शहर के नजदीक पहुंच रही थी। राधाबाई का कंधा थपथपाकर उसे जगानेवाला गाड़ीवाला उसकी ओर आश्चर्य के साथ देख रहा था। तब राधा को मालूम हुआ कि उसने जो कुछ देखा, वह बुरा सपना है। इस तरह पीड़ा पहुँचाने वाले सपना देखने का कारण रुक्मिणी के प्रति राधा के मन में जो ईर्ष्या है, वही है।

घर पहुँचते ही राधाबाई ने पड़ोसी घर में जाकर रुक्मिणी से प्यार भरी बातें कीं और कहा—"मैंने आज तक अपने दिल की बातें नहीं बताईं; दीदी, तुम सचमुच बड़ी सुंदर हो! मेरे कोई दीदी नहीं है, तुमने उसकी पूर्ति की!"

पहले उसे देखते ही मुँह मोड़ने वाली राधाबाई अब प्यार से अपने को दीदी पुकारते देख रुक्मिणी बड़ी खुश हुई, और गद्-गद् स्वर में बोली—"अगर मेरे जरिये तुम्हारे दीदी न होने की कमी पूरी हो गई तो तुम्हारे द्वारा मेरे भी छोटी बहन न होने की कमी पूरी हो जाएगी। मेरी प्यारी छोटी बहन, मैं अभी रसोई बनाकर तुम्हारे घर आ जाती हूँ।"
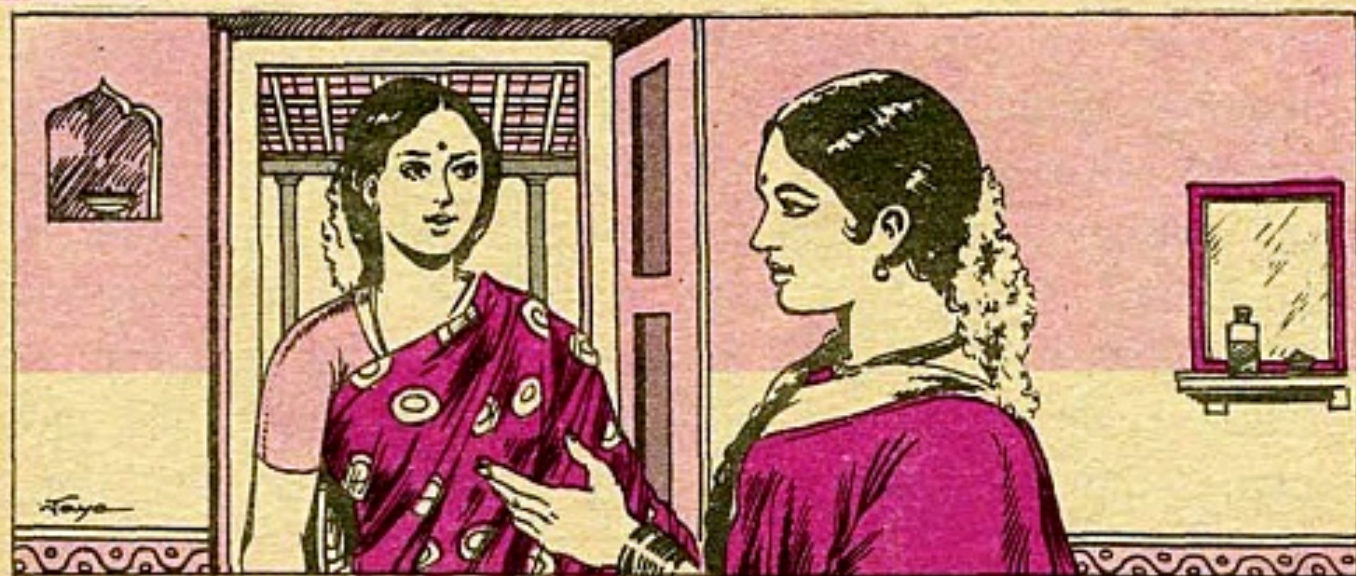
गुणवती

सैकड़ों साल पहले की बात है। कांचीपुर में शक्तिसार नामक एक वैश्य युवक रहा करता था। अपने बाप-ददाओं का पेशा व्यापार करते हुए उसने लाखों रुपये कमाये। बीस वर्ष की उम्र में उसने शादी करनी चाही।

शक्तिसार ने बड़े बुजुर्गों के मुँह से सुन रखा था कि पत्नी का चरित्र ही एक गृहस्थ के हित और उन्नति का कारण होता है। इस कारण उसने एक गुणवती कन्या के साथ विवाह करने का निश्चय किया। इसी विचार से वह अपने लिए एक योग्य कन्या की खोज करते देशाटन पर चल पड़ा।

शक्तिसार सामुद्रिक शास्त्र की अच्छी जानकारी रखता था। इसी बहाने उसने कई कन्याओं के हाथों की रेखाएँ देखीं। जिसकी रेखाएँ उसे उत्तम लक्षणों वाली मालूम हुईं, उनकी उसने एक छोटी-सी परीक्षा लेनी चाही।

शक्तिसार यात्रा के समय अपने साथ दो सेर धान ले गया था। वह अपनी इस यात्रा के दौरान अपनी पसंद की किसी कन्या के हाथ थोड़े से धान देकर पूछा करता था—"तुम ये धान लेकर मेरे वास्ते एक जून का खाना बनाकर खिला सकोगी?" उसका यह सवाल सुनकर कुछ कन्याएँ अचरज में आ जातीं और उसे पागल समझ कर हँस देती थीं! कुछ कन्याओं ने उससे उल्टा सवाल किया कि "यह कैसे मुमकिन होगा?" पर एक कन्या भी धान लेकर उसे खाना खिलाने को तैयार न हुई।

फिर भी शक्तिसार निराश नहीं हुआ। वह बराबर अपनी कोशिश में लगा रहा। एक दिन जब वह कावेरी नदी के किनारे

२५ वर्ष पहले की चन्दामामा की कहानी

जा रहा था, तब उसे एक छोटा-सा गाँव दीख पड़ा। उस गाँव के छोर पर एक झोंपड़ी में गुणवती नामक एक कन्या और उसे पालने वाली एक बूढ़ी दिखाई दीं। वे बड़ी गरीब थीं।

शक्तिसार ने गुणवती की हस्त रेखाएँ देख प्रसन्न होकर पूछा—"मेरे पास थोड़ा-सा धान है। इस धान को लेकर क्या तुम मेरे वास्ते इस जून का खाना खिला सकोगी?"

यह सवाल सुनकर गुणवती न अजरज में आई और न हँस पड़ी। उसने ख़ुशी के साथ शक्तिसार की इच्छा पूरी करने को मान लिया।

गुणवती ने धान लेकर भिगोया, फिर उसे सुखाकर कूटा, उसका थोथा निकाला, उसे बूढ़ी नानी के हाथ देकर उसके बदले लकड़ी खरीद लाने को कहा।

बूढ़ी ने वैसा ही किया। गुणवती ने चावल धोकर चूल्हा जलाया। चावल के पकने पर मांड़ निकाला। उसमें नमक डालकर शक्तिसार से बोली—"आप पहले यह मांड पी लीजिएगा। थोड़ी देर आराम करके स्नान कीजिए, तब मैं आप को खाना खिलाऊँगी।"

खाना बनते ही गुणवती ने लकड़ी बुझाई, उनके कोयले नानी के हाथ देकर बोली—"नानीजी, ये कोयले तुम बाज़ार में बेचकर थोड़ी सब्जी और छाछ खरीद लाओ।"

बूढ़ी सब्जी व छाछ लेकर पहुँची। इस बीच शक्तिसार नहा-धोकर लौटा। सब्जी और छाछ वाला खाना उसने भर पेट खाया। उसे गुणवती की किफ़ायती और युक्ति पर बड़ा आश्चर्य हुआ। इसके बाद उसने गुणवती को अपना परिचय देकर उसके साथ शादी करने की इच्छा प्रकट की। गुणवती ने शक्तिसार के साथ शादी करने को मान लिया। तब नानी की अनुमति से गुणवती को अपने गाँव ले गया। उसके साथ विवाह करके कई सालों तक सुखमय जिन्दगी बिताई।

राजा शत्रुंजय चुहिया के साथ चलुक वर्मा को अपने महल से भगाते हुए बोला–"तुम हमारे बीच रहने योग्य नहीं हो। तुम्हारे मूषिक वाहनधारी विघ्नेश्वर की भक्ति के अनुरूप उसी जाति की गृहिणी तुम्हारे योग्य है। तुम्हारी पत्नी दिन भर किसीको न दिखाई देने लायक तुम्हारे छोटे मकान में चूहों के कई बिल हैं।"

अपने पिता की बातें सुनकर चलुक वर्मा बड़ी शांति के साथ बोला–"पिताजी, एक पिता के रूप में अपने सभी पुत्रों का विवाह करना बहुत अच्छी बात है। कहा जाता है कि पति-पत्नी का सबंध पहले ही निश्चित हुआ होता है। इस में हमारा वश कुछ नहीं चलता। यह सब विघ्नेश्वर के सकल्प का फल है!" चलुक जब उत्तम ग्रंथों का अध्ययन करते होते तब उसकी पत्नी चलुका पास में बैठकर बड़े ध्यान के साथ सुना करती थी। चलुक जब विघ्नेश्वर की पूजा में लगा रहता, तब चलुका अपने मुंह से फूल ला देती थी। चलुक के भोजन करने के बाद जो कुछ चलुका को खाने को दिया जाता, वही खाती। यों समय बीतता गया। आखिर विनायक-चतुर्थी निकट आ पड़ी।

सब लोग घर लीप-पोत कर धान कूट रहे थे। चलुका ने एक रात को सभी चूहों को बुलवा भेजा। चूहों ने चूने में अपनी पूंछें डुबोकर दीवारों पर चूना

डुबो सकती हूँ? मैं मूर्खा हूँ, नालायक़ हूँ। मेरे ज़िंदा रहने से फ़ायदा ही क्या है?" यों विचार कर वह एक चट्टान पर अपना सर फोड़ने को तैयार हो गई। उस वक़्त विघ्नेश्वर ने प्रत्यक्ष होकर चलुका की पीठ पर प्यार से निहारा, इस पर चलुका का पाप विमोचन हुआ और वह एक देव कन्या कल्याण किंकिणी के नाम से अपने निज रूप में आ गई। उसने विघ्नेश्वर के चरणों पर गिर कर प्रणाम किया और अनेक प्रकार से उसकी स्तुति की। तब विघ्नेश्वर कल्याण किंकिणी को आशीर्वाद देकर अंतर्धान हो गये।

पोत दिया। अपने दांतों से धान के छिलके निकाल कर चावल बनाया।

विनायक चतुर्थी के दिन सवेरे चलुक वर्मा की सभी भाभियाँ सोने के कलशों में पानी भरकर अपने सर पर उठाये नदी से चली आ रही थीं; इसे देख चलुक थोड़ा दुखी हुआ।

इस पर चलुका तुरंत एक कलश में घुस गई। उसे लुढकाते नदी के किनारे पहुँची। मगर कलश से बाहर निकलने पर उसे लगा कि वह बड़ा भारी कलश है और नदी में बाढ़ आ रही है, तब वह हताश हो सोचने लगी—"मैं कलश को लुढ़का कर तो यहाँ तक ले आई, लेकिन इसे पानी में कैसे

इसके बाद कल्याण किंकिणी पानी से भरे कलश को अपने सर पर लेकर घर की ओर चल पड़ी। उस दृश्य को देख लोग मूर्तियों की भांति खड़े हो विस्मय के साथ मन ही मन कहने लगे—"यह देवता सुंदरी कौन है? यह किसके घर जा रही है?"

चलुकवर्मा की भाभियाँ कल्याण किंकिणी को अपने देवर के घर में क़दम रखते देख लज्जा के मारे नतमस्तक हो गईं।

राजा शत्रुंजय अपनी मूर्खता पर शर्मिंदा हुआ, तब चलुक वर्मा को उसकी पत्नी के साथ राज महल में लिवा ले गया।

चलुक वर्मा के बड़े भाइयों ने अपने पिता से कहा—"पिताजी, आपने हमारे

विवाह भी इस प्रकार की चुहियों के साथ क्यों नहीं किये? ऐसा करते तो हमें भी अप्सराएँ पत्नी के रूप में मिल जातीं!"

शत्रुंजय यह सोचकर दुखी हुआ कि क्या ऐसे मूर्ख पुत्रों के वास्ते ही मैंने यह सारा साम्राज्य कमा रखा है? फिर वह विरक्त हो तपस्या करने के लिए जंगल में चला गया।

इसके बाद चलुक वर्मा के भाई आपस में लड़ते खतम हो गये। चलुक वर्मा के विरोध करने के बावजूद भी जनता ने उसे अपना राजा घोषित किया। चलुक वर्मा के शासन में जनता ने सुख और शांति के साथ अपने दिन बिताये।

चलुक वर्मा ने कल्याण किंकिणी के नाम पर एक और महा नगर का निर्माण करवाया। कल्याण किंकिणी के द्वारा उसके चार पुत्र हुए। कालांतर में वे चालुक्य कहलाये। इस तरह चालुक्य वंशों के मूल पुरुष बने चलुक वर्मा के राज्य काल में वातापि नगर अनेक मंदिरों से सुशोभित हुआ। कलाओं और पंडितों का केन्द्र बना। उस नगर के अधि देवता के रूप में विघ्नेश्वर की आराधना हुई। उत्कृष्ट शिल्प से पूर्ण मंदिर के मण्डप को देखने राजाओं से लेकर साधारण लोग सदा आया करते थे। चालुक्यों ने चारों तरफ़ अपने राज्य स्थापित कर शासन किया। चालुक्य वंशी राजा कई शाखाओं में बंटकर सारे देश में फैल गये। वे लोग बाद को वातापि पर शासन करते वातापि चालुक्य कहलाये। इसी तरह कल्याणी पर राज्य करनेवाले कल्याणी चालुक्य, वेंगी पर राज्य करनेवाले वेंगी चालुक्य, कहलाये। साथ ही पूर्वी चालुक्य, पश्चिमी चालुक्य, सौराष्ट्र चालुक्य आदि नामों से इतिहास में प्रसिद्ध हुए। कालांतर में वातापि नगर बादामी के नाम से लोकप्रिय हुआ।

विघ्नेश्वर की मनोरंजक गाथाएँ

वातापि गणपति के रूप में विघ्नेश्वर तथा विघ्नेश्वर पुण्य क्षेत्र के रूप में वातापि

नगर जब सारे देश में प्रसिद्ध हो चुके थे, उन दिनों में पावन मिश्र नामक एक पंडित शाम के समय गणपति के मंदिर के मण्डप में बच्चों को विघ्नेश्वर से संबंधी कहानियाँ सुनाया करते थे। उन कहानियों को सुनकर छोटे-बड़े सभी लोग अपना मनोरंजन करते थे।

मंदिर के मण्डप की दीवारों पर विघ्नेश्वर की गाथाएँ चित्रित थीं। उन चित्रों में से एक मनोरंजक चित्र एक बालक गुरुजी को दिखा कर उसकी कहानी सुनाने के लिए जोर देने लगा।

पावन मिश्र ने कहानी सुनाना शुरू किया—एक नगर में सत्य शर्मा और लोभ गुप्त नामक दो गृहस्थ अड़ोस-पड़ोस में रहा करते थे। लोभ गुप्त का असली नाम लाभ गुप्त था। लेकिन वह लोभ के लिए मशहूर था, इसलिए वह लोभ गुप्त नाम से प्रसिद्ध हुआ।

सत्यशर्मा और लोभ गुप्त रोज शिवाले में जाया करते थे। सत्य शर्मा मंदिर के गर्भगृह में जाने के पहले विघ्नेश्वर की मूर्ति को प्रणाम करके शिवजी के दर्शन करने चला जाता था। लेकिन लोभ गुप्त गर्भगृह में प्रवेश करते ही शिवलिंग के सामने साष्टांग दण्डवत करता, देर तक लाभ पहुँचाने की प्रार्थना करता था।

एक दिन सत्य शर्मा शिवजी के दर्शन करके लौट रहा था, उसी वक़्त लोभ गुप्त मंदिर में पूजा करने चला आ रहा था, तब नंदीश्वर विघ्नेश्वर से पूछ रहा था—"विघ्नेश्वर, आप का भक्त सत्य शर्मा इस वक़्त बड़ी तंगी में है। क्या आप उसकी मदद नहीं करेंगे?"

"हाँ, हाँ नंदी, तुम्हारा कहना सही है। आज शाम तक मैं उसे एक हज़ार रुपये पहुँचाने जा रहा हूँ।" विघ्नेश्वर ने जवाब दिया।

पत्थर की मूर्तियों के द्वारा बातचीत करते देख लोभगुप्त अचरज में आ गया, पल भर भी देरी किये बिना वह सीधे

सत्य शर्मा के घर पहुँचा, बोला–"सत्य शर्मा, मालूम होता है कि तुम्हें रुपयों की ज़रूरत आ पड़ी है। मैं पाँच सौ रुपये दे देता हूँ, ले लो।" यों समझा कर उसी वक़्त वह रुपये ले आया।

इसके जवाब में सत्य शर्मा बोला– "महशय गुप्तजी, कल ही तो आप ने कहा था कि तुरंत ब्याज सहित मूल धन जल्दी नहीं चुकायेंगे तो मकान खाली करना होगा। ऐसी हालत में मैं ये पाँच सौ कैसे चुका सकता हूँ?"

"ओह, यही तुम्हारी शंका है? तुम ये पाँच सौ रुपये ले लो, आज शाम तक तुम को जो कुछ मिलेगा, सो मुझे दे दो।" लोभ गुप्त ने कहा।

लोभ गुप्त की बातें सून सत्य शर्मा संकोच कर रहा था, तभी उसकी पत्नी बोली–"आप पहले ये रुपये ले लीजिए; उधर रिश्ता क़ायम करने आये हुए लोग बड़ी देर से बैठे हुए हैं!"

सत्यशर्मा की बेटी की शादी उसी वक़्त क़ायम हो गई थी, वर के माता-पिता वधू को पाँच-सौ रुपयों के गहने देने पर जोर दे रहे थे।

सत्यशर्मा सकुचाते बोला–"गुप्तजी, शाम तक मुझे जो कुछ प्राप्त होगा, सो आप को देने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है; मगर मुझे शाम तक कुछ हाथ लगने की कोई संभावना नहीं है।" इस पर लोभ गुप्त बोला–"इस बात की फ़िक्र मत करो। हम तो पड़ोसी ठहरें। मैं इस वक़्त तुम्हें दूं तो तुम बाद को मुझे जरूर दोगे। तुम संकोच न करो।" यों समझाते हुए लोभ गुप्त ने सत्यशर्मा के हाथ पाँच-सौ रुपये थमा दिये।
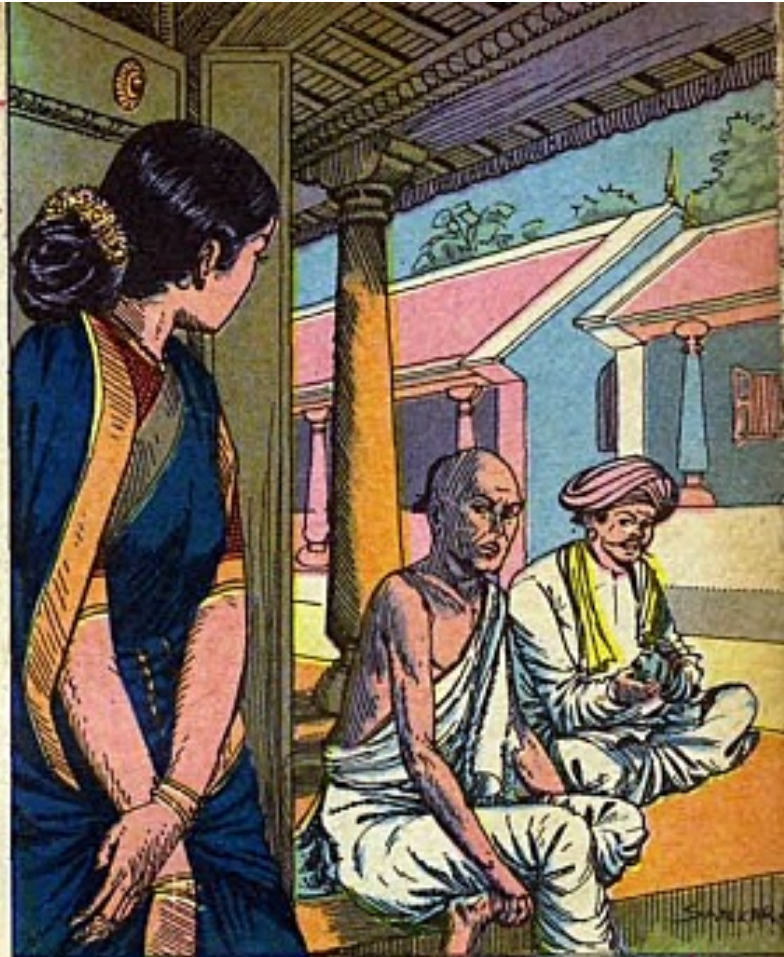
लोभ गुप्त अच्छी तरह से जानता था कि सत्यशर्मा बात के पक्के हैं।

शाम होने को थी, लेकिन सत्यशर्मा को धन प्राप्त होने की कोई सूचना न थी। इस पर लोभ गुप्त घबड़ा कर मंदिर में पहुँचा, बिघ्नेश्वर की मूर्ति की सूंड पकड़

अन्याय है। मैंने पाँच सौ रुपये पहले ही दे दिये हैं?"

"ऐसी बात है? तुम पाँच सौ रुपये देकर एक हज़ार हड़पना चाहते थे? अरे कंजूस, मकखीचूस, तुम्हारे लोभ के प्रायश्चित्त के रूप में तुम सत्यशर्मा को शेष पाँच सौ रुपये दे दो। साथ ही तुमने उसे जो कर्ज दिया है, उसका चुकता कर लो, उसकी बेटी की शादी तुम अपने घर की शादी जैसे मनाओ!" ये शब्द विघ्नेश्वर की मूर्ति के भीतर से सुनाई दिये।

उसी वक़्त लोभ गुप्त ने अपने परिवार वालों को बुला भेजा, सत्यशर्मा को बाकी पाँच सौ रुपये दिलवाया, उसका कर्ज रद्द कर दिया, यह शपथ ली कि वह सत्यशर्मा की बेटी की शादी का पूरा ख़र्च उठायेगा, तभी जाकर लोभ गुप्त का हाथ सूंड से बाहर निकला।

गाँव वाले यह सोचकर खुश हुए कि कंजूस गुप्त को अच्छा सबक़ मिल गया है।

इसके बाद लोभगुप्त ने सत्यशर्मा की बेटी की शादी अपनी बेटी की शादी के जैसे ठाठ से मनाई। उसी दिन से अपनी कंजूसी को त्याग कर अन्याय पूर्वक कमाया हुआ धन धार्मिक कार्यों में लगाने लगा। जल्द ही वह विघ्नेश्वर की कृपा का पात्र बना और बड़ा ही धर्मात्मा कहलाया।

कर खींचते हुए बोला–"विघ्नेश्वरजी, सत्यशर्मा को जल्दी एक हज़ार रुपये दिला दीजिए..." यों कह ही रहा था कि उसकी हथेली सूंड के बीच फंस गई, लोभ गुप्त ने उसे निकालने की बड़ी कोशिश की, मगर सूंड ने उसे कसकर पकड़ लिया।

पीड़ा के मारे लोभ गुप्त छटपटाने लगा, उसी समय मूर्ति के भीतर से ये शब्द सुनाई दिये–"तुम जितनी जल्दी सत्यशर्मा को एक हज़ार रुपये दिलाओगे, उतनी ही जल्दी तुम्हें छूट मिलेगी।"

दूसरे हाथ से लोभ गुप्त अपना सर पीटते हुए बोला–"भगवन, यह तो सरासर

SANKAR
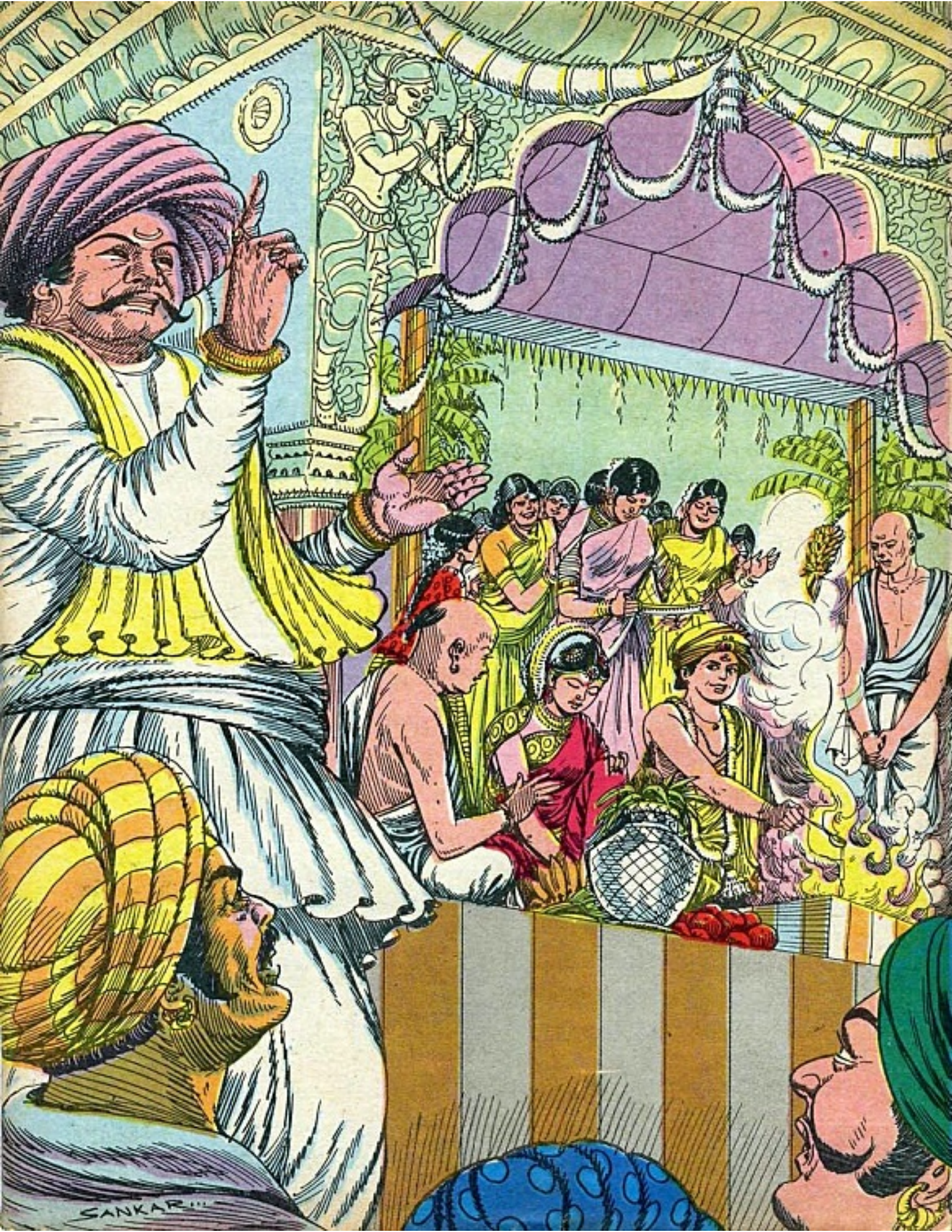
कहानी समाप्त कर पावन मिश्र ने विघ्नेश्वर के प्रसाद को बच्चों में बांट दिया। बच्चे उस प्रसाद को मुँह में डाले खुशी के साथ उछलते-कूदते अपने-अपने घर दौड़कर चले गये।

दूसरे दिन शाम को एक लड़की ने एक और चित्र दिखाकर उसकी कहानी सुनाने पर जोर दिया। पावन मिश्र ने यों कहानी शुरू की :

कल्याणी नगर में कलहकंठी नामक एक अमीर औरत थी। उसकी बहू को उसने इस बहाने सता-सता कर बेरहमी के साथ घर से निकाल दिया था कि वह अपने मायके से ज्यादा गहने लेकर नहीं आई।

कलहकंठी की बहू सौदामिनी दुखी हो अपने ससुराल से चल पड़ी, अपने मायके लौटते वह रास्ता भटक गई और जंगल में पहुँची। आखिर भूख के मारे तड़पते वह एक कैथ वृक्ष के पास गिर पड़ी।

वह सोचने लगी कि उसके मायके जाने पर कोई फ़ायदा नहीं है। क्यों कि उसकी शादी के वक़्त गहनों के वास्ते उसके पिता ने जो कर्ज लिया था, वह अभी तक चुका न पाये। ऐसी हालत में वे फिर ये गहने कहाँ से ला सकते हैं? इसलिए इस घने जंगल में मर जाना ही कहीं उत्तम है। सौदामिनी यों सोच ही रही थी, तभी पेड़ से एक कैथ फल गिर पड़ा और लुढ़कते-लुढ़कते उसके समीप आ पहुँचा। वह फल हाथ में लेकर सौदामिनी उठकर बैठने को हुई, तभी एक बड़ा हाथी दौड़ते हुए उसकी ओर आते दिखाई पड़ा।

सौदामिनी बचपन से ही विघ्नेश्वर के प्रति बड़ी श्रद्धा व भक्ति रखती थी। वह विघ्नेश्वर का स्मरण करके हाथी के पैरों के नीचे दबकर मरने के ख्याल से उसके सामने गई, मगर हाथी अचानक रुक गया।

इसके बाद हाथी ने अपनी सूँड से सौदामिनी के हाथ से कैथा ले लिया, उसे आशीर्वाद देने के ढंग से उसके सर पर सूँड से फेरा और उसका हाथ पकड़कर उसे सीधे एक गुफा के पास ले गया।

सात समंदर पार मेरी नाव चली
लाल परी के साथ मेरी नाव चली
भर भर लाऊं जेम्स नाव में अपनी झटपट
लेना हो जो जेम्स किनारे से हटना मत
GEMS
कितना सुन्दर सपना...झट ले लो जेम अपना!
कैडबरिज़
चॉकलेट्स
कैडबरिज़ जेम्स हैं ही ऐसे; मीठे मीठे सपनों जैसे!
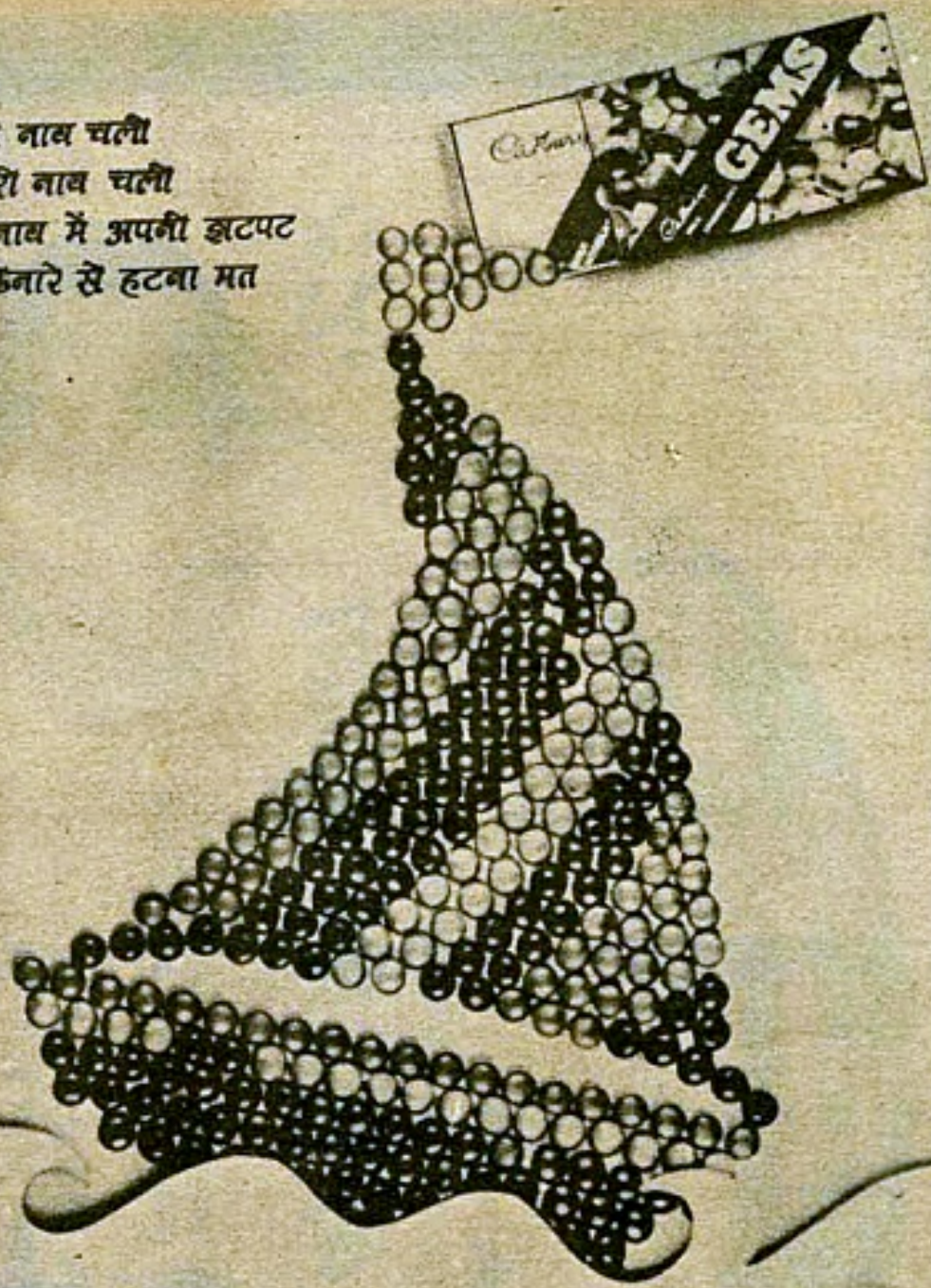
गंधर्व राजकुमारी

[९]

योध कन्याओं की अधिकारिणी बूढ़ी औरत की बातें सुनकर हसन दहाड़े मार कर रो पड़ा। उसके दुख को देख बूढ़ी पसीज उठी और बोली–"बेटा, बताओ, मैं तुम्हारे वास्ते क्या करूँ? तुमको मैंने इस टापू में क़दम रखने दिया। इसी अपराध में मेरा सर कट सकता है। तुम अपनी बीबी की बात भूल जाओ, तुम्हें मैं बहुत सारा धन दूँगी। तुम इसे लेते जाओ। उस धन से तुम अपनी सारी जिंदगी एक चक्रवर्ती जैसे सुख भोगो।"

हसन बूढ़ी के पैर पकड़कर गिड़गिड़ाने लगा–"माँ, मुझे लगता है कि मेरी कोशिश जरूर सफल होगी। इसीलिए मैं इन सारे खतरों से बचकर यहाँ तक पहुँच पाया। इस हालत में मुझे अपनी कोशिश बंद करने के बदले मरना कहीं बेहतर है।"

बूढ़ी ने भाँप लिया कि हसन जिद्दी है। वह बोली–"जो कुछ होना है, सो होगा ही। तुम्हारे साथ जरूरत पड़ने पर मैं भी अपनी जान देने को तैयार हूँ। इसके सिवाय कोई दूसरा रास्ता नहीं है। ये सातों वाक्-वाक् द्वीप चंक्रवर्ती की सात बेटियों के अधीन हैं। यह तो बड़ी राजकुमारी का द्वीप है। इनका नाम नूरल हूदा है। मैं इनको तुम्हारी सारी कहानी सुनाकर इन्हें तुम्हारे अनुकूल बनाने की पूरी कोशिश करूँगी।"

नूरल हुदा बूढ़ी को देखते ही आदर पूर्वक उठ खड़ी हुई, उसको एक आसन दिखा कर बैठने का संकेत किया, तब पूछा–"क्या आप मेरे वास्ते कोई खुश खबरी ले आई हैं? या मुझ से कुछ माँगने आई हैं? माँग लीजिए, मैं जरूर दूँगी।"

इस पर नूरल हुदा डाँटकर बोली—"अरी बूढ़ी शैतान! तुमने हमारे टापू में एक मर्द को कैसे आने दिया? तुम्हारा गला घोंटने के पहले मैं उस आदमी को देखना चाहती हूँ। उसको यहाँ पर ले आओ। उसने हमारे टापू में अपना क़दम रखकर इसे नापाक किया है।"

बूढ़ी यों गुनगुनाते—"इस जवान लड़के ने मेरी जान पर आफ़त ढा दी है।" घबराते हुए हसन के पास पहुँची और बोली—"अबे, बद क़िस्मतवर, चलो मेरे साथ। हमारी महारानी तुमको एक बार देखना चाहती हैं।" बूढ़ी बोली।

"महारानीजी, मेरी रानी बिटिया! आज एक विचित्र घटना घटी है। वह कहानी आप सुनेंगी तो खिल-खिला कर हँस पड़ेंगी! एक जवान न मालूम कैसे हमारे टापू के किनारे आ पहुँचा। वह रो रहा था! मैंने उसके बारे में पूछा तो उसने बताया कि क़िस्मत उसे यहाँ पर खींच लाई है और वह अपनी बीबी की खोज कर रहा है। उसने अपनी बीबी का हुलिया बताया। उसका बयान सुनने पर मुझे लगा कि वह औरत आप या आप की बहनों में से कोई होंगी। वैसे वह मानव है, मगर वह अपूर्व सुंदर है।" बूढ़ी ने बताया।

हसन यह सोचते उसके पीछे हो लिया—"न मालूम आज मुझ पर क्या बीतने वाला है?" जब बूढ़ी के साथ हसन नूरल हुदा के पास पहुँचा, तब नूरल नक़ाब ओढ़े हुए थी। हसन ने उसे सलाम करके उस पर शायरी बनाकर सुनाई। चक्रवर्ती की बेटी ने शायरी सुनकर उससे सवाल करने का इशारा किया। बूढ़ी ने हसन की ओर मुड़कर पूछा—"महारानी तुम्हारा नाम, तुम्हारी बीबी और बच्चों के नाम जानना चाहती हैं।"

हसन ने कहा—"महारानी, मेरा नाम हसन है। मैं ईराक देश के बस्रा नगर का बाशिंदा हूँ। मैं अपनी बीबी का नाम

नहीं जानता। मेरे बच्चों के नाम नासिर और मन्सूर हैं।"

बूढ़ी ने पूछा कि तुम्हारी बीबी तुमको छोड़कर क्यों चली गई है? हसन ने बताया कि उसकी बीबी लाचार होकर बगदाद के खलीफा के महल से उड़कर चली गई है। उसने मेरी माँ को बताया कि वह वाक्-वाक् द्वीपों में रहने वाली है।

इस पर नूरल हुदा मौन भंग करते हुए बोली—"अगर तुम्हारे प्रति तुम्हारी बीबी के दिल में मुहब्बत न होती तो वह अपने निवास का पता न देती। अगर मुहब्बत होती तो यह भी मुमकिन है कि वह तुम्हें छोड़कर चली नहीं जाती।"

हसन ने क़सम खाकर बताया कि यह साबित करने के लिए उसके पास कई उदाहरण हैं कि उसकी बीबी उसके साथ दिल से मुहब्बत करती है। लेकिन उसके मन में उड़ने का कौतूहल था, इसीलिए वह लाचार होकर चली गई है।

बूढ़ी चक्रवर्ती की बेटी के पैरों पर गिर कर बोली—"मैंने आपको पाल-पोसकर बड़ा किया। मेरी बिनती सुन लीजिए। आप इस अभागे को सज़ा न दीजिए। यह बहुत सारी तक़लीफ़ें झेलकर खुदा की मेहर्बानी से यहाँ तक पहुँच गया है। हमारा फ़र्ज है कि हम इसको अपना मेहमान मान ले। उसने जो गलतियाँ कीं, वे सिर्फ़ अपनी बीबी के प्रति मुहब्बत की वजह से की हैं। इसलिए हम उन्हें माफ़ कर सकते हैं। अलावा इसके यह जवान बड़ी अच्छी शायरी सुना सकता है। आप एक बार अपना नक़ाब उतार कर अपना चेहरा दिखा दे तो आप पर अनोखी शायरी कर सकता है।"

नूरल हुदा के मन में हसन की शायरी सुनने की इच्छा जगी, उसने अपने चेहरे के नक़ाब को हटा दिया। उसके चेहरे को देखते ही हसन चीखकर बेहोश हो गया। बूढ़ी ने उसका उपचार करके उसके बेहोश होने का कारण पूछा। हसन ने

लेकिन अपने मुंह से बयान नहीं कर सकता।" हसन ने जवाब दिया।

यह जवाब सुनने पर चक्रवर्ती की बेटी ने दो बातें स्पष्ट समझ लीं। एक– इसका दिल उसकी ओर खींचा नहीं जा सकता। इसकी बीबी उसकी छे बहनों से कोई एक हो सकती है। इस पर उसके दिल में हसन और उसकी मुहब्बत का पात्र बनी अपनी छोटी बहन पर ईर्ष्या और क्रोध पैदा हो गया। इसके बाद उसने अपने मन में यह निश्चय कर लिया कि उसकी बीबी का पता लगाकर उसके साथ हसन को भी कड़ी सजा सुना दे।

उसने बूढ़ी की ओर मुखातिब होकर कहा–"अरी सुनो, तुम इसी वक़्त बाकी छटों टापुओं में जाकर मेरी छे छोटी बहनों को बुला ले आओ! उनसे कह दो कि मैं उन्हें देखना चाहती हूँ। उन्हें इस जवान के बारे में कुछ न कहो, समझीं!"

बूढ़ी को अपनी मलिका की चाल समझ में न आई। इसलिए वह एक एक टापू में जाकर एक-एक राजकुमारी को साथ लेकर आख़िरी राजकुमारी के टापू में पहुँची। हसन की बीबी वही राजकुमारी थी। गंधर्व चक्रवर्ती सबसे छोटी राजकुमारी को ज्यादा प्यार करते थे, इस वजह से वे उसी के पास रहा करते थे।

जवाब दिया–"यह दर असल मेरी बीबी जैसी है, पर मेरी बीबी नहीं।"

यह जवाब सुनकर चक्रवर्ती की बेटी खिल-खिलाकर हँस पड़ी और बोली–"यह सचमुच पागल है। सुनो, तुम्हारी बातों से मालूम होता है कि तुम्हारी बीबी के चेहरे और मेरे चेहरे में बहुत सारी समानताएँ हैं। लगता है कि थोड़ा फ़रक़ भी है। यह बताओ, हम दोनों के बीच समानताएँ क्या हैं? और फ़रक क्या हैं?"

"महारानी, मेरी बीबी और आपके बदन व ढांचे में कोई फ़रक़ नहीं है। आप दोनों के बीच फ़रक़ ज़रूर है। उसे मैं दिल से पहचान सकता हूँ,

गंधर्व चक्रवर्ती ने अपनी छोटी बेटी को उन्हें छोड़ कर जाने से आपत्ति उठाई। उन्होंने बताया कि वे अपशकुन देख रहे हैं।

मगर हसन की बीबी ने अपने पिता को समझाया—"बाबूजी, मेरी दीदी ने मेरे वास्ते दावत तैयार की और बुलावा भेजा। मेरा न जाना अच्छा न होगा। दो साल से मैंने उनको देखा तक नहीं है। इस वक़्त न जाऊँ तो वे मुझपर नाराज़ हो जायेंगी। मुझे कोई डर नहीं है। एक बार जब मैं बहुत दिन आप से दूर रही तो आप यह सोचकर चिंता में पड़ गये थे कि न मालूम मुझपर क्या बीता है। फिर भी आखिर में लौट आई थी न? इसी तरह मैं फिर लौट आऊँगी। तिस पर मैं इस बार कहीं दूर नहीं जा रही हूँ। आखिर हमारे टापुओं में ही तो जाती हूँ।"

इस शर्त पर गंधर्व चक्रवर्ती ने छोटी राजकुमारी को जाने की अनुमति दे दी कि वह थोड़े दिन अपनी बड़ी दीदी के यहाँ बिताकर लौट आवे! बूढ़ी छठों राजकुमारियों को साथ ले नूरल हुदा के पास चल पड़ी। अपनी छोटी बहनों के आने के पहले नूरल हुदा विशेष प्रकार की पोशाकें और गहने धारण कर सिंहासन पर ठाठ से बैठी हुई थी। उसके सामने हसन उदास चेहरा लिए खड़ा हुआ था। योध कन्याएं तलवार हाथ में लिए उसका पहरा दे रही थीं।

बूढ़ी ने प्रवेश करके नूरल को बताया कि उसकी छोटी बहनें आ गई हैं, तब एक एक को अपने सामने हाज़िर होने का हुक़्म दे दिया। सब से पहले दूसरी बहन आई। नूरल हुदा ने उसका परामर्श करके अपने पास बिठाया और हसन को संबोधित कर पूछा—"हे मानव, क्या यह तुम्हारी बीबी तो नहीं?"

"इनका सौंदर्य वर्णन के बाहर है, फिर भी इनमें और मेरी बीबी के बीच थोड़ा फ़रक़ है। उसका बयान मैं शब्दों में नहीं कर सकता।" हसन ने कहा।

(अगले अंक में समाप्य)

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार २५)

पुरस्कृत परिचयोक्तियां सितम्बर १९८२ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी।

Devidas Kasbekar

★

P. C. Dhir

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियां दो-तीन शब्दों की हों और परस्पर संबंधित हों।

★ जुलाई १० तक परिचयोक्तियां प्राप्त होनी चाहिए, उसके बाद प्राप्त होनेवाली परिचयोक्तियों पर विचार नहीं किया जाएगा।

★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) २५ रु. का पुरस्कार दिया जाएगा।

★ दोनों परिचयोक्तियां कार्ड पर लिखकर (परिचयोक्तियों से भिन्न बातें उसमें न लिखें) निम्नलिखित पते पर भेजें : चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

मई के फोटो-परिणाम

प्रथम फोटो : **आँख मिचौनी का खेल हम खेलें!**

द्वितीय फोटो : **परेशान हैं पाने को मिट्टी का तेल!!**

प्रेषक : अनिल कुमार मित्तल, मित्तल एंटरप्राइजस, कबाडी बाजार, सिकंदराबाद, (उ. प्र.)

पुरस्कार की राशि रु. २५ इस महीने के अंत तक भेजी जाएगी।

Printed by B. V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND (Prop. of Chandamama Publications) 188, Arcot Road, Madras-600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.